संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
वर्ष : १३
अंक : १२३
मार्च २००३
फाल्गुन मास
विक्रम सं. २०५९
ऋषि प्रसाद
हिन्दी
होली : १८ मार्च
होली खेल रहे सद्गुरुजी प्यारे भक्तजनों के संग। भर पिचकारी सद्गुरु मारे ज्ञान के भर-भर रंग॥
छैल-छबीले साधक आये, ग्वाल-बाल सत्संगी आये। भजन और कीर्तन सुने-सुनाये, चढ़ गयी नयी तरंग॥

अपने तुच्छ अहं को भगवान में विलीन करने का
महापुरुषों द्वारा सुविकसित सरल उपाय है भगवत्कीर्तन।
पूज्यश्री के मधुमय सान्निध्य में भगवत्कीर्तन में मस्त अनगुलवासी (उड़ीसा)
बालक हो या वृद्ध, राजा हो या रंक, गृहस्थी हो या साधु,
सभीको परम पावन करनेवाली एकमात्र बूटी है ब्रह्मज्ञान का सत्संग।
इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है रायपुर सत्संग-कार्यक्रम (छत्तीसगढ़) का यह मनोहर दृश्य।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १३
अंक : १२३
९ मार्च २००३
फाल्गुन मास, विक्रम संवत् २०५९
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'**
श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा (गांधीनगर), साबरमती, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०

संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०

'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

सद्गुरु होते ब्रह्म-समान

सद्गुरु की महिमा का बंधु, किस विधि करूँ बखान।
सद्गुरु होते ब्रह्म-समान, सद्गुरु होते ब्रह्म-समान॥
बहुत हमारे पुण्य फले हैं, जो सद्गुरु धरा पर उतरे हैं।
इनकी पगधूलि को शीश नवा लो, हो गया ब्रह्मस्नान॥
सद्गुरु होते...
सद्गुरु सम नहीं सज्जन दूजा, भाव-हृदय से कर लो पूजा।
इनकी दृष्टिमात्र से मिटते, मानव के सकल मोह-अभिमान॥
बंधु, सखा, जनक, महतारी; गुरु की पदवी सबसे भारी।
भक्तों के कष्ट मिटाने हेतु, न्योछावर कर देते अपने प्राण॥
सद्गुरु होते ब्रह्म-समान...
सद्गुरु की लीला है न्यारी, होते हैं ये तो परोपकारी।
इनके वचन निभाने हेतु, विधि बदल देती अपना विधान॥
सद्गुरु होते ब्रह्म-समान...
जो चाहो अपना कल्याण, न करो सद्गुरु का अपमान।
सद्गुरु रूठ गये तो समझो, तुमसे रूठ गये भगवान॥
सद्गुरु होते ब्रह्म-समान, सद्गुरु होते ब्रह्म-समान॥

- अशोक भाटिया

*

सत्संग बिना सन्मति गति पाना क्या जाने

जग में सत्संग बिना मानव, सन्मति गति पाना क्या जाने।
आसुरी प्रकृति के जो प्राणी, सत्संग में आना क्या जानें॥
जीवन में जितने दुःख दिखते, वे निज दोषों के कारण ही।
पर जिसमें इतना ज्ञान न हो, वह दोष मिटाना क्या जाने॥
उन्नति का साधन सेवा है, इससे ही आत्मशुद्धि होती।
पर लोभी अभिमानी कामी, सेवा को निभाना क्या जाने॥
गांजा, अफीम या भंग, चरस, सिगरेट, शराब पीनेवाले।
व्यसनों को जो नहीं छोड़ पाते, मन वश में लाना क्या जानें॥
जो स्वयं ईर्ष्या काम क्रोध की अग्नि लिये फिरते उर में।
जब अपनी लगी बुझा न सके, वे पर की बुझाना क्या जानें॥
आलसी विलासी धर्मविमुख, इन्द्रिय सुख-लोलुप अज्ञानी।
जब बिगड़े आप ही, दूसरों की बिगड़ी बनाना क्या जाने॥
जो तन को मल-मल धोते हैं, भीतर मन जिनका काला है।
वे मोही गोरेपन के, मन का मैल छुड़ाना क्या जानें॥
वे साधक भी धोखा हैं करते, करते प्रपंच का जो चिन्तन।
यदि प्रेम नहीं प्रियतम प्रभु में, तब ध्यान लगाना क्या जाने॥
जो पहुँचे हुए संतजन हैं, उनसे पूछो पंथ की बातें।
जो बाहर-बाहर भटकते हैं, वे मार्ग दिखाना क्या जानें॥
दुःख में जो त्यागी हो न सके, बन सके न दुःख में जो उदार।
वह पथिक प्रेममय प्रियतम से, तन्मय हो जाना क्या जाने॥

- पथिकजी महाराज

*

रंग श्याम रंग में

अरे अचेत ? चेत जा, न जा कभी कुसंग में।
सके न त्याग संग तो, हमेशा जा सुसंग में॥
न द्रव्य में, न दार में, न राग राख अंग में।
समस्त रंग छोड़, एक रंग श्याम रंग में॥
'कुरोग भोग जान' सर्व भोग दूर त्याग रे।
न खान में, न पान में, न अन्य मांहि लाग रे॥
यथा गजेन्द्र लोट-पोट न्हाय देव गंग में।
समस्त विश्व भूल, नित्य रंग श्याम रंग में॥
न नृत्य में, न गान में, न ताल में, न तान में।
न राग राख अश्व में, न नाम में, न यान में॥
न पुष्प में, न माल में, न राग हो पलंग में।
विसार सर्व भोग, रोग, रंग श्याम रंग में॥
न धर्म में, न अर्थ में, न काम राख काम में।
न ऋद्धि में, न सिद्धि में, न कीर्ति में, न नाम में॥
विरक्त भक्त मत्त नित्य, कृष्ण भक्ति भंग में।
अशेष वासना मिटाय, रंग श्याम रंग में॥
उच्चार राम नाम रे, वृथा न वाक्य बोल रे।
पधार साधु संग में, यहाँ वहाँ न डोल रे॥
सुना चरित्र कृष्ण नित्य, भक्ति की उमंग में।
न सांख्य में, न योग मांहि, रंग श्याम रंग में॥
जहाँ समस्त रंग होय, श्वेत सो प्रसिद्ध है।
जहाँ न कोई संग होय, श्याम रंग सिद्ध है॥
समस्त मांहि कृष्ण देख, व्याघ्र में भुजंग में।
विसार सर्व रूप रंग, रंग श्याम रंग में॥

- श्री भोले बाबा

तत्त्वज्ञान में स्थिति करें...

⁂ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ⁂

गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'श्रीरामचरितमानस' में कहा है :

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥

'धर्म का आचरण करने से आसक्ति मिटती है, वैराग्य उभरता है। योग से ज्ञान होता है और ज्ञान से सब दुःखों से, बंधनों से सदा के लिए मुक्ति व परमानंद की प्राप्ति होती है।'

धर्मानुष्ठान पाप-वासनाओं को मिटाने में सहायता करता है। योग चित्तवृत्तियों का निरोध करता है। चित्त की परमात्म-शांति से दोषों की निवृत्ति और सामर्थ्य की प्राप्ति होती है।

योग समान बल नहीं, सांख्य समान नहीं ज्ञान।

सत्संग सुनने से सही ज्ञान का उदय होता है, उसका मनन करने से संशय दूर होने लगते हैं तथा निदिध्यासन करने से विपरीत भावना मिटती है।

'मैं आत्मा हूँ'- यह सही भावना है। 'मैं माई हूँ... मैं भाई हूँ...'- यह विपरीत भावना है। इससे भी ज्यादा विपरीत भावना है : 'मैं पटेल हूँ... मैं बनिया हूँ...।' बनियों में भी 'मैं फलाने कुटुम्ब का हूँ... मैं फलाने संप्रदाय का हूँ...'- ये और भी छोटे दायरे हो गये।

ये छोटे-छोटे दायरे, छोटे-छोटे खण्ड ही राग-द्वेष पैदा करते हैं। इनसे ही आसक्ति और ईर्ष्या उत्पन्न होती है और ये ही हमें अखण्ड से दूर कर देते हैं। यदि अखण्ड चैतन्य आत्मा का ज्ञान हो जाय तो आसक्ति और ईर्ष्या सदा के लिए समाप्त हो जायेगी।

खण्ड-खण्ड के ज्ञान में ही लगता है कि 'यह अपना है... यह पराया है...।' जिसे हम अपना मानते हैं उससे हमें राग हो जाता है और जिसे पराया मानते हैं उससे उपरामता व द्वेष हो जाता है। पार्टीबाजी में बड़े-में-बड़ा दोष यही है कि अपनी पार्टी के आदमी चाहे बदमाश हों तब भी उसकी सराहना करनी पड़ती है कि 'अपनी पार्टी अच्छी है।' सामनेवाली पार्टी में कोई चरित्रवान हो, देवता जैसा हो तब भी उसकी निन्दा करनी पड़ती है कि 'यह ऐसा है... वैसा है...।'

पार्टीबाजी में राग-द्वेष होता है, जातिवाद और संप्रदायवाद में भी राग-द्वेष होता है किंतु जब अपने अखण्ड आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है तो न किसीसे राग रहता है न द्वेष।

ज्ञान का कभी जन्म नहीं होता। ज्ञान के जन्म को अज्ञान से नहीं जाना जा सकता क्योंकि 'ज्ञान का जन्म हुआ' इसको जानने में अज्ञान समर्थ नहीं है। ज्ञान होने के पहले भी तो ज्ञान था। अतः ज्ञान अजन्मा है।

ज्ञान की मृत्यु भी नहीं होती। ज्ञान पाने के साधनों की मृत्यु हो सकती है लेकिन शुद्ध ज्ञान की कभी मृत्यु नहीं होती। जैसे दीपक बुझ सकता है, किंतु सूर्य का प्रकाश देना बंद नहीं हो सकता। रात्रि में जब यहाँ पर (भारत में) सूर्य नहीं दिखता तब लंडन, अमेरिका आदि अन्य स्थानों में दिखता है। इस प्रकार जैसे सूर्य नित्य प्रकाशरूप है, ऐसे ही ज्ञान भी नित्य प्रकाशरूप है।

जो सदा है उसको मौत कैसे मार सकती है ? ज्ञान मर गया तो उसे कैसे जाना जायेगा ? क्या अज्ञान से जाना जायेगा ? नहीं, ज्ञान की मृत्यु अज्ञान से नहीं जानी जायेगी। अतः ज्ञान की मृत्यु नहीं होती और ज्ञान का जन्म भी नहीं होता। जन्म और मृत्यु अपने इन साधनों की होती है। जैसे आकाश में मकान बने तो उनके बीच आकाश है और वे टूटे तब भी वह है, ऐसे ही ये शरीररूपी मकान बने तब भी ज्ञानस्वरूप चैतन्य ज्यों-का-त्यों है और ये टूट जायें तब भी वह ज्यों-का-त्यों है।

जो एक में अनेक दिखाये उसे विज्ञान बोलते

हैं और जो अनेक की गहराई में एक की खबर दे, अनेक में छुपे हुए एक को दिखा दे उसे अध्यात्मज्ञान कहते हैं। इस अध्यात्मज्ञान में ही नित्य स्थिति करें।

इसके लिए क्या करें ? - तत्त्व का दर्शन करें। जैसे- चूड़ी, अँगूठी, चेन, कंगन आदि आभूषण अलग-अलग हैं किंतु उनका तत्त्व सोना एक है। घड़े, सुराही, कुल्हड़ आदि बर्तन अलग-अलग हैं किंतु उनका तत्त्व मिट्टी एक है। इसी प्रकार मनुष्यों पर थोपी हुई हिन्दू, मुसलिम, ईसाई, पारसी आदि धर्मों की कल्पनाएँ अलग-अलग हैं किंतु सभीमें अस्थि, मांस, रक्त आदि तत्त्व एक ही हैं। वही सच्चिदानंद है।

सबकी गहराई में चमकनेवाला चैतन्यस्वरूप आत्मा एक है। गाय की आँख जिसकी सत्ता से देखती है उसीकी सत्ता से तुम्हारी आँख भी देखती है। चींटी की बुद्धि में जो ज्ञान है वही तुम्हारी बुद्धि में भी है लेकिन तुम्हारी बुद्धि ज्यादा विकसित है तो ज्ञान का लाभ ज्यादा लेती है। अन्यथा चींटी भी यह जानती है कि बरसात आनेवाली हो तो अपने अण्डों को सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहिए।

अनेक की गहराई में जो एक छुपा है उसका अनुभव करना, उसमें जगना - यह ज्ञान है लेकिन जिसकी सत्ता से सब हो रहा है उसीको भूलकर बाहर भटकना - यह तो अज्ञान है।

श्रीकृष्ण कहते हैं :

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

अज्ञान से जिनका शुद्ध ज्ञान ढँक गया है वे मोहित हो जाते हैं। सुख लेने के लिए छल-कपट करके पैसे तो इकट्ठे कर लेते हैं, किंतु सुख की जगह पर तनाव बढ़ा लेते हैं और असली सुख से दूर चले जाते हैं। इधर-उधर करके थोड़ी वाहवाही तो पा लेते हैं किंतु भीतर से उनमें खोखलापन आ जाता है। अध्यात्मज्ञान की कमी के कारण ही सारे दुःख, संघर्ष, बेचैनी, अशांति और सारी मुसीबतें पैदा होती हैं। ज्ञान में स्थिति होने से सब मुसीबतें सदा के लिए दूर हो जाती हैं।

जैसे - स्वप्न में आप सेठ बन गये और आपको इन्कम टैक्स की चिन्ता पैदा हुई। आपके यहाँ छापा पड़ा, आप घबराये और बीमार पड़ गये। किंतु आँख खुली तो देखा कि कमाये हुए रुपये अपनी ही चेतना थी, इन्कम टैक्सवाले भी अपनी चेतना थी और बीमारी भी अपनी ही चेतना थी। आँख खुलते ही स्वप्न की मुसीबतें और चिन्ताएँ छू हो गयीं। ऐसे ही तत्त्वज्ञान होते ही संसार के सुख-दुःख छू हो जायेंगे।

प्रतिदिन तीनों संध्याओं के समय, आधा-आधा घंटा भी यदि इस तत्त्वज्ञान में शांत हो जायें तो थोड़े ही दिनों में कार्यक्षमता बढ़ती है, योग्यता, समझ और सुख बढ़ जाते हैं और परमात्म-रस उभरने लगता है।

जो तत्त्वज्ञान को पाने में लग जाता है, उसे छोटी-मोटी किताबें नहीं रखनी पड़तीं, उसको खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती, स्वास्थ्य के लिए बाहर की दवाई-गोली नहीं लेनी पड़ती, सुख के लिए चिकन-पार्टी, डिस्को डांस या पॉप म्यूज़िक, किसीकी गुलामी नहीं करनी पड़ती वरन् उसके हृदय में नित्य-नवीन सुख प्रकट होने लगता है। यही कारण था कि प्राचीन काल में लोग ज्यादा स्वस्थ, दीर्घायु, सुखी और प्रसन्न रहते थे।

आज का आदमी सुख के लिए न जाने क्या-क्या करता है फिर भी ज्यादा दुःखी और परेशान रहता है क्योंकि वह अध्यात्मज्ञान से विमुख होकर बहिर्मुख हो गया है। यदि वह पुनः तत्त्वज्ञान के रास्ते पर चल पड़े तो उस स्थिति को पा लेगा जहाँ उसके लिए न कुछ पाना शेष रहता है न छोड़ना।

तत्त्वज्ञान को पाने के लिए यत्न करना बुद्धिमानी है और उसको छोड़कर दूसरी चीजों को पाने के लिए यत्न करना बेवकूफी है। तत्त्वज्ञान हो जाय तो बाकी के सारे ज्ञान सरल हो जायेंगे। ऐसा नहीं है कि वैज्ञानिकों ने अभी आविष्कार किये और आगे बढ़े। हमारे पूर्वज इससे भी कई गुना अधिक आगे थे। धरती के राजा स्वर्ग के देवताओं को मदद करने के लिए चले जाते थे !

एक बार देव-दानव युद्ध के समय इन्द्र ने राजा खट्वांग से प्रार्थना की कि 'आप हमारे सेनापति बनिये।' राजा खट्वांग ने प्रार्थना स्वीकार की। वे दैत्यों के साथ वर्षों तक जूझते रहे और अंत में

विजयी हुए। तब देवताओं ने प्रसन्न होकर खट्वांग से कहा : ''राजन् ! वरदान माँगिये।''

खट्वांग ने पूछा : ''मेरी आयु कितनी शेष है ?''

''आयु तो दो घड़ी शेष है।''

''दो घड़ी के लिए क्या माँगूँगा ?''

राजा खट्वांग जानते थे कि सार केवल तत्त्वज्ञान पाने में है। उन्होंने उन्हीं दो घड़ियों में तत्त्वज्ञान पा लिया। कितनी ऊँची समझ के धनी रहे होंगे वे ! देवताओं के द्वारा वरदान माँगने के लिए कहने पर भी कुछ न माँगा और अंतर्सुख पाकर मुक्त हो गये।

वह तत्त्व तो सदा है, सर्वत्र है और सबका अपना-आपा है। प्रधानमंत्री की कुर्सी सबकी अपनी नहीं है, केवल प्रधानमंत्री की ही है। सेठ की गद्दी केवल सेठ की ही है लेकिन तत्त्वज्ञान तो सबका है। तत्त्वज्ञान के सिवाय किसी दूसरी चीज का ज्ञान होगा तो या तो उस चीज के प्रति आकर्षण होगा या विकर्षण, शांति नहीं मिलेगी; किंतु तत्त्वज्ञान पा लेने पर परम शांति मिल जायेगी।

✽ संसार में केवल एक ही रोग है। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'- इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सर्व व्याधियों का मूल है। वह कभी एक दुःख का रूप लेता है तो कभी दूसरे दुःख का। इन सर्व व्याधियों की एक ही दवा है : अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्मत्व में जाग जाना।

✽ स्वर्ग का साम्राज्य आपके भीतर ही है। पुस्तकों में, मंदिरों में, तीर्थों में, पहाड़ों में, जंगलों में आनंद की खोज करना व्यर्थ है। खोज करना ही हो तो उस अन्तस्थ आत्मानंद का खजाना खोल देनेवाले किसी तत्त्ववेत्ता महापुरुष की खोज करो।

✽ जब तक आप अपने अंतःकरण के अंधकार को दूर करने के लिए कटिबद्ध नहीं होंगे तब तक तीन सौ तैंतीस करोड़ कृष्ण अवतार ले लें फिर भी आपको परम लाभ नहीं होगा। - आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से

छठे अध्याय का माहात्म्य

श्रीभगवान कहते हैं : सुमुखि ! अब मैं छठे अध्याय का माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुननेवाले मनुष्यों के लिए मुक्ति करतलगत हो जाती है। गोदावरी नदी के तट पर प्रतिष्ठानपुर (पैठण) नामक एक विशाल नगर है, जहाँ मैं पिप्पलेश के नाम से विख्यात होकर रहता हूँ। उस नगर में जानश्रुति नामक एक राजा रहते थे, जो भूमण्डल की प्रजा को अत्यन्त प्रिय थे। उनका प्रताप मार्तण्ड-मण्डल के प्रचण्ड तेज के समान जान पड़ता था। प्रतिदिन होनेवाले उनके यज्ञ के धुएँ से नन्दनवन के कल्पवृक्ष इस प्रकार काले पड़ गये थे मानों, राजा की असाधारण दानशीलता देखकर वे लज्जित हो गये हों। उनके यज्ञ में प्राप्त पुरोडाश (यज्ञ-भाग) के रसास्वादन में सदा आसक्त होने के कारण देवता लोग कभी प्रतिष्ठानपुर को छोड़कर बाहर नहीं जाते थे। दान के समय उनके द्वारा छोड़ी हुई जल-धारा, प्रतापरूपी तेज और यज्ञ के धूमों से पुष्ट होकर मेघ ठीक समय पर वर्षा करते थे। उस राजा के शासनकाल में ईतियों (खेती में होनेवाले छः प्रकार के उपद्रवों) के लिए कहीं थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता था और अच्छी नीतियों का सर्वत्र प्रसार होता था। वे बावली, कुएँ और पोखरे खुदवाने के बहाने मानों प्रतिदिन पृथ्वी के भीतर की निधियों का अवलोकन करते थे।

एक समय राजा के दान, तप, यज्ञ और प्रजापालन से संतुष्ट होकर स्वर्ग के देवता उन्हें वर देने के लिए आये। वे कमलनाल के समान उज्ज्वल हंसों का रूप धारण कर अपनी पाँखें हिलाते हुए

आकाशमार्ग से चलने लगे। बड़ी उतावली के साथ उड़ते हुए वे सभी हंस परस्पर बातचीत भी करते जाते थे। उनमें से भद्राश्व आदि दो-तीन हंस वेग से उड़कर आगे निकल गये। तब पीछेवाले हंसों ने आगे जानेवालों को सम्बोधित करके कहा : 'अरे भाई भद्राश्व! तुम लोग वेग से चलकर आगे क्यों हो गये ? यह मार्ग बड़ा दुर्गम है। इसमें हम सबको साथ मिलकर चलना चाहिए। क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता, यह सामने ही पुण्यमूर्ति महाराज जानश्रुति का तेजपुंज अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकाशमान हो रहा है ? (उस तेज से भस्म होने की आशंका है, अतः सावधान होकर चलना चाहिए।)'

पीछेवाले हंसों के ये वचन सुनकर आगेवाले हंस हँस पड़े और उच्च स्वर से उनकी बातों की अवहेलना करते हुए बोले : 'अरे भाई ! क्या राजा जानश्रुति का तेज ब्रह्मवादी महात्मा रैक्व के तेज से भी अधिक तीव्र है ?'

हंसों की ये बातें सुनकर राजा जानश्रुति अपने ऊँचे महल की छत से उतर गये और सुखपूर्वक आसन पर विराजमान हो अपने सारथि को बुलाकर बोले : 'जाओ, महात्मा रैक्व को यहाँ ले आओ।' राजा का यह अमृत के समान वचन सुनकर मह नामक सारथि प्रसन्नता प्रकट करता हुआ नगर से बाहर निकला। सबसे पहले उसने मुक्तिदायिनी काशीपुरी की यात्रा की, जहाँ जगत के स्वामी भगवान विश्वनाथ मनुष्यों को उपदेश दिया करते हैं। उसके बाद वह गया क्षेत्र में पहुँचा, जहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंवाले भगवान गदाधर सम्पूर्ण लोकों का उद्धार करने के लिए निवास करते हैं। तदनन्तर नाना तीर्थों में भ्रमण करता हुआ सारथि पापनाशिनी मथुरापुरी में गया। यह भगवान श्रीकृष्ण का आदि स्थान है, जो परम महान तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वेद और शास्त्रों में वह तीर्थ त्रिभुवनपति भगवान गोविन्द के अवतारस्थान के नाम से प्रसिद्ध है। नाना देवता और ब्रह्मर्षि उसका सेवन करते हैं। मथुरा नगर कालिन्दी (यमुना) के किनारे शोभा पाता है। उसकी आकृति अर्द्धचन्द्र के समान प्रतीत होती है। वह सब तीर्थों के निवास से परिपूर्ण है और परम आनंद प्रदान करने के कारण सुन्दर प्रतीत होता है। गोवर्धन पर्वत के होने से मथुरामण्डल की शोभा और भी बढ़ गयी है। वह पवित्र वृक्षों और लताओं से आवृत है। उसमें बारह वन हैं। वह परम पुण्यमय तथा सबको विश्राम देनेवाले श्रुतियों के सारभूत भगवान श्रीकृष्ण की आधारभूमि है।

तत्पश्चात् मथुरा से पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर बहुत दूर तक जाने पर सारथि को काश्मीर नामक नगर दिखायी दिया, जहाँ शंख के समान उज्ज्वल गगनचुम्बी महलों की पंक्तियाँ भगवान शंकर के अट्टहास की भाँति शोभा पाती हैं, जहाँ ब्राह्मणों के शास्त्रीय आलाप सुनकर मूक मनुष्य भी सुन्दर वाणी और पदों का उच्चारण करते हुए देवता के समान हो जाते हैं, जहाँ निरन्तर होनेवाले यज्ञों के धूएँ से व्याप्त होने के कारण आकाश-मण्डल मेघों से धुलते रहने पर भी अपनी कालिमा नहीं छोड़ता, जहाँ उपाध्याय के पास आकर छात्र जन्मकालीन अभ्यास से ही सम्पूर्ण कलाएँ स्वतः पढ़ लेते हैं तथा जहाँ माणिकेश्वर नाम से प्रसिद्ध भगवान चन्द्रशेखर देहधारियों को वरदान देने के लिए नित्य निवास करते हैं। काश्मीर के राजा मणिकेश्वर ने दिग्विजय में समस्त राजाओं को जीतकर भगवान शिव का पूजन किया था, तभी से शिवजी माणिकेश्वर नाम से भी जाने जाते हैं। उन्हींके मन्दिर के दरवाजे पर महात्मा रैक्व एक छोटी-सी गाड़ी पर बैठे अपने अंगों को खुजलाते हुए वृक्ष की छाया का सेवन कर रहे थे। इसी अवस्था में सारथि ने उन्हें देखा। राजा के बताये हुए भिन्न-भिन्न चिह्नों से उसने शीघ्र ही रैक्व को पहचान लिया और उनके चरणों में प्रणाम करके कहा : 'ब्रह्मन् ! आप किस स्थान पर रहते हैं ? आपका पूरा नाम क्या है ? आप तो सदा स्वच्छंद विचरनेवाले हैं, फिर यहाँ किसलिए ठहरे हैं ? इस समय आपका क्या करने का विचार है ?'

सारथि के ये वचन सुनकर परमानन्द में निमग्न महात्मा रैक्व ने कुछ सोचकर उससे कहा : 'यद्यपि हम पूर्णकाम हैं - हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, तथापि कोई भी हमारी मनोवृत्ति के अनुसार परिचर्या कर सकता है।' रैक्व के हार्दिक अभिप्राय

को आदरपूर्वक ग्रहण करके सारथि धीरे-से राजा के पास चल दिया। वहाँ पहुँचकर राजा को प्रणाम करके उसने हाथ जोड़ सारा समाचार निवेदन किया। उस समय स्वामी के दर्शन से उसके मन में बड़ी प्रसन्नता थी। सारथि के वचन सुनकर राजा के नेत्र आश्चर्य से चकित हो उठे। उनके हृदय में रैक्व का सत्कार करने की श्रद्धा जागृत हुई। उन्होंने दो खच्चरियों से जुती हुई एक गाड़ी लेकर यात्रा की। साथ ही मोती के हार, अच्छे-अच्छे वस्त्र और एक सहस्र गौएँ भी ले लीं। काश्मीर-मण्डल में महात्मा रैक्व जहाँ रहते थे उस स्थान पर पहुँचकर राजा ने सारी वस्तुएँ उनके आगे निवेदन कर दीं और पृथ्वी पर पड़कर साष्टांग प्रणाम किया। महात्मा रैक्व अत्यन्त भक्ति के साथ चरणों में पड़े हुए राजा जानश्रुति पर कुपित हो उठे और बोले : 'रे शूद्र ! तू दुष्ट राजा है। क्या तू मेरा वृत्तान्त नहीं जानता ? यह खच्चरियों से जुती हुई अपनी ऊँची गाड़ी ले जा। ये वस्त्र, ये मोतियों के हार और ये दूध देनेवाली गौएँ भी स्वयं ही ले जा।' इस तरह आज्ञा देकर रैक्व ने राजा के मन में भय उत्पन्न कर दिया। तब राजा ने शाप के भय से महात्मा रैक्व के दोनों चरण पकड़ लिये और भक्तिपूर्वक कहा : 'ब्रह्मन् ! मुझ पर प्रसन्न होइये। भगवन् ! आपमें यह अद्भुत माहात्म्य कैसे आया ? प्रसन्न होकर मुझे ठीक-ठीक बताइये।'

रैक्व ने कहा : राजन् ! मैं प्रतिदिन गीता के छठे अध्याय का जप करता हूँ, इसीसे मेरी तेजोराशि देवताओं के लिए भी दुःसह है।

तदनन्तर परम बुद्धिमान राजा जानश्रुति ने यत्नपूर्वक महात्मा रैक्व से गीता के छठे अध्याय का अभ्यास किया। इससे उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई। रैक्व पूर्ववत् मोक्षदायक गीता के छठे अध्याय का जप जारी रखते हुए भगवान माणिकेश्वर के समीप आनन्दमग्न हो रहने लगे। हंस का रूप धारण करके वरदान देने के लिए आये हुए देवता भी विस्मित होकर स्वेच्छानुसार चले गये। जो मनुष्य सदा इस एक ही अध्याय का जप करता है, वह भी भगवान विष्णु के ही स्वरूप को प्राप्त होता है - इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय के कुछ श्लोक

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥

जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है और केवल अग्नि का त्याग करनेवाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करनेवाला योगी नहीं है। (१)

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

योग में आरूढ़ होने की इच्छावाले मननशील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति में निष्कामभाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ़ हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष का जो सर्वसंकल्पों का अभाव है, वही कल्याण में हेतु कहा जाता है। (३)

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य, आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। (५)

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

दुःखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है। (१७)

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

यह स्थिर न रहनेवाला और चंचल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसार में विचरता है, उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मा में ही निरुद्ध करे। (२६)

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होनेवाला है, परंतु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है। (३५)

साधना के सोपान

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

परमात्म-शांति सामर्थ्य की जननी है। परमात्म-शांति से मुदिता बढ़ती है, एकाग्रता आती है, समता का सद्गुण विकसित होता है, बुद्धि में विलक्षण लक्षण उभरने लगते हैं, जीवन में संतोष आने लगता है, अपने-आपमें सुखी रहने का सौभाग्य उभरता है।

राग के कारण दीनता आती है और भय, शोक, रोग आदि दुर्गुण भी आते हैं। राग के कारण ही द्वेष होता है और राग के कारण ही पाप होते हैं। किंतु अंतरात्मा का सुख मिलने से राग मिटने लगता है और वैराग्य परिपक्व होने लगता है।

अंतरात्मा का शुद्ध सुख जैसा ज्ञानियों को मिलता है, वैसे ही सुख की झलकें साधक के जीवन में भगवान और गुरु की कृपा से संचारित हो जाती हैं। उससे साधक का विवेक और वैराग्य प्रखर होने लगता है। विवेक-वैराग्य प्रखर होने से निर्भयता तथा साहस उसका स्वभाव बन जाता है और उसकी वृत्ति सहज ही आत्माभिमुख होने लगती है।

साधना में दृढ़ता दृढ़ संकल्प से आती है। दृढ़ संकल्प शक्ति के बिना नहीं होता। शक्ति संयम के बिना नहीं आती और व्यर्थ के आकर्षणों व व्यर्थ के कर्मों का त्याग किये बिना संयम नहीं आता। व्यर्थता का त्याग करने से सार्थक आत्मा-परमात्मा में प्रीति होने लगती है।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता। श्रद्धा के बिना सत्संग का लाभ नहीं मिलता। अपनत्व के बिना श्रद्धा और प्रीति में निखार नहीं आता और अपनत्व आता है व्यर्थ कामनाओं का त्याग करने से।

'भगवान ! यह दे दो... गुरुदेव ! इतनी कृपा कर दो...' - ऐसा सकाम भाव नहीं रखें, क्योंकि निष्कामता से प्रीति उभरती है और कामना से प्रीति पर लांछन लगता है। जब हम व्यर्थ कामनाओं का त्याग करते हैं, तब हमें वासना-त्याग करने का भी बल मिलता है।

साधक के लिए ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर यह बड़े-में-बड़ा विघ्न है कि वह अपनी रुचि का दास बन जाता है। अपनी रुचि के दास बनने के कारण ही सहज में ईश्वर-प्राप्ति का अधिकार मिलते हुए भी हम ईश्वर-प्राप्ति से वंचित रह जाते हैं। अपनी मान्यता, रुचि और वासना का त्याग करने से कामनाएँ शिथिल होती हैं। उनके शिथिल होने से भगवान और संत या गुरु में श्रद्धा व अपनत्व प्रगाढ़ होने लगता है।

श्रद्धा व अपनत्व प्रगाढ़ होने से मन प्रीतियुक्त होने लगता है। मन प्रीतियुक्त होने से बुद्धि निर्दोष होने लगती है। बुद्धि निर्दोष होने से श्रद्धा प्रगाढ़ होने लगती है। **श्रद्धा प्रगाढ़ होने से संत का संग अंतरंग होने लगता है। फिर कभी बाहर से मिले तभी उनका संग हुआ, ऐसे नहीं बल्कि हजारों मील दूर होते हुए भी वे प्रेमी भक्त भगवत्संग और सत्संग का अहसास कर लेते हैं।** परमात्म-प्राप्त संतों के प्रति श्रद्धा न होने से सुख के लिए कोई देश-परदेश भटकते हैं तो कोई तीर्थों में। भगवान श्रीकृष्ण के प्रति जिन्होंने श्रद्धा की वे तो रस व ज्ञान से तृप्त हुए लेकिन उनके पुत्र उनमें श्रद्धा नहीं कर पाये बल्कि उनकी आज्ञा की अवहेलना ही करते रहे जिससे वे अन्ततः गुटबंदी करके लड़ मरे।

कई लोग भगवान और गुरु के निकट रहते हुए भी उनके प्रति श्रद्धा-विश्वास एवं साधना की तत्परता में कमी होने के कारण अमृतरस से वंचित रह जाते हैं। जिनमें श्रद्धा और साधना की तत्परता होती है, उन्हें बाह्य दूरी प्रभावित नहीं करती। वे भगवान या गुरु से अंतरात्मा का सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। ऐसे भक्त नित्य-नवीन प्रीति, नित्य-नवीन रस का आस्वादन करने लगते हैं। फिर संसार के तुच्छ आकर्षणों और तुच्छ सुखों से उनका मन सहज ही उपराम होने लगता है।

जब तुच्छ आकर्षणों व सुखों से मन उपराम होने लगता है, तब व्यर्थ का चिन्तन और व्यर्थ के कर्म अपने-आप छूट जाते हैं और संयम साधक का स्वभाव हो जाता है। शक्ति और दृढ़ संकल्प ये उसके अनुचर साधक के पास हाजिर हो जाते हैं और उसको साधना के ऊँचे शिखर पर, सिद्धत्व तक पहुँचा देते हैं जिससे साधक परमात्म-शांति को प्राप्त हो जाता है।

भागवत कथा

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

स्वायम्भुव मनु की संतान एवं उत्तानपाद के भाई प्रियव्रत, नारदजी के आश्रम में परमात्म-शांति की यात्रा करने में लग गये और ऐसे लगे कि उन्हें परमार्थतत्त्व का बोध हो गया। वे संसार से पूर्णतः उपराम हो गये एवं अपना सारा समय ब्रह्माभ्यास में ही बिताना चाहते थे। तब उनके पिता स्वायम्भुव मनु उन्हें समझा-बुझाकर वापस ले जाने के लिए नारदजी के आश्रम में आये और राज्यशासन की आज्ञा दी।

प्रियव्रत ने परमात्म-सुख के आगे राज्य-सुख को तुच्छ जान रखा था। कितना भी खाओ-पियो-भोगो किंतु अंत में सब यहीं धरा रह जायेगा - यह सोचकर प्रियव्रत ने राजकाज के पचड़े में पड़ना उपयुक्त न समझा और पिता की आज्ञा को अस्वीकार कर दिया।

परीक्षित ने शुकदेवजी से प्रश्न किया कि 'एक बार जो परमात्म-शांति पा लेता है वह पुनः संसार-बंधन में नहीं बँधता। जब प्रियव्रत परमात्म-शांति की यात्रा में सफल हो चुके थे तो वे पुनः संसार-बंधन में कैसे बँध गये और राजकाज में कैसे प्रवृत्त हो गये ?'

शुकदेवजी महाराज ने कहा कि 'पिता के द्वारा राज्य सँभालने की आज्ञा मिलने पर प्रियव्रत ने इन्कार कर दिया। तब मनु महाराज तनिक शांत हो गये और मन-ही-मन अपने पिता ब्रह्माजी को याद करने लगे। उसी समय ब्रह्माजी वहाँ आये और प्रियव्रत से बोले : ''पुत्र ! तुमने परमात्म-शांति को पा लिया है, यह हम जानते हैं। किंतु अगर अच्छे लोग राजकाज नहीं सँभालेंगे तो दूसरे लोग उसमें पड़ जायेंगे। अब तुम अनासक्त भाव से अपने कर्तव्य का पालन करो।''

प्रियव्रत को लगा कि ब्रह्माजी दोनों ही तरह से मेरे दादा लगते हैं : मनु महाराज के भी पिता हैं और मेरे गुरु नारदजी के भी। अतः प्रियव्रत बोले : ''जैसी आपकी आज्ञा।''

ब्रह्माजी : ''पुत्र ! सब भगवान के संकल्प से प्रवृत्ति करते हैं। प्रवृत्ति में आसक्त होना बंधनकारी है। किंतु परमात्मा में आसक्त होना, परमात्म-सुख का अनुभव करना और निर्लिप्त भाव से प्रवृत्ति करना, **बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय** प्रवृत्ति करना - यह आप्तपुरुषों का स्वभाव होता है।

पुत्र ! भगवान के शुभ संकल्प से ही हम भी सृष्टि की उत्पत्ति आदि कार्य करते हैं। तुम्हारे पिता मनु महाराज ने भी इतने वर्षों तक राजकाज की गाड़ी को खींचा। अब तुम निर्लिप्त भाव से राजकाज सँभालो।''

प्रियव्रत ने पितामह की आज्ञा को शिरोधार्य करके राजकाज में प्रवेश किया। बाद में उन्होंने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से विवाह किया एवं दस पुत्रों - आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि को जन्म दिया। ग्यारहवीं संतान कन्या उर्जस्वती थी। इनमें से कवि, महावीर और सवन - ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए।

इस प्रकार राजा प्रियव्रत ने कई वर्षों तक राज्य किया। बाद में संसार का त्याग करके नारदजी के आश्रम में गये और अंतरात्मा के सुख में गति की। सार्वभौम राजा प्रियव्रत कर्मयोगजन्य शक्ति से उपराम होकर आत्मशक्ति में फिर से लग गया।

प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र ने पुत्र की कामना से भगवान ब्रह्माजी की आराधना की एवं नाभि आदि नौ संतानों के पिता बने।

आग्नीध्र के पुत्र नाभि को कोई संतान नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ

पुत्र की कामना से भगवान यज्ञपुरुष की आराधना की। भगवान के प्रकट होने पर ब्राह्मणों ने उनका अभिवादन किया और कहा : ''हे परमेश्वर ! हम तो लालची संसारी लोग हाथी से छकड़ा खिंचवाने का दुःसाहस कर रहे हैं। कृपानिधे ! कृपया हमारी नादानी को न देखें। आप अपनी करुणा से हमारे यजमान को श्रेष्ठ पुत्र का आशीर्वाद देने की कृपा कीजिये।

हे प्रभु ! हम उठें, बैठें, ठोकर खायें, गिरें या छींकें तब भी आपके मंगलकारी, पापनाशक नाम का ही उच्चारण करें। हम जिस देश, वेश, काल में रहें आपकी स्मृति और प्रीति हम पर बनी रहे।

हे परमेश्वर ! राजा नाभि को आपके जैसा तेजस्वी पुत्र प्राप्त हो - ऐसी हमारी प्रार्थना है।''

भगवान ने कहा : ''मेरे जैसा तो मैं ही हूँ। तुम जैसे तपस्वी, कर्मकाण्ड में रत रहनेवाले, संयमी, ब्रह्मचारी, सदाचारी ब्राह्मणों की इच्छा मैं अवश्य पूर्ण करूँगा। मैं स्वयं अपनी अंशकला से राजा नाभि के यहाँ अवतार लूँगा।''

समय पाकर राजा नाभि के यहाँ तेजस्वी संतान का जन्म हुआ। मेरुदेवी की कोख से उत्पन्न इस बालक का नाम ऋषभदेव रखा गया। जो जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर होकर अभी भी पूजे जाते हैं। जिनके पुत्र भरत के नाम से अजनाभ खण्ड 'भारतवर्ष' होकर अभी भी प्रसिद्धि पा रहा है। ऋषभदेव का राज्याभिषेक करके पिता नाभि एवं माता मेरुदेवी एकांत में चले गये और श्रीहरि के ज्ञान-ध्यान में रत होकर मुक्तात्मा हो गये।

ऋषभदेव ने कई वर्षों तक राज्य किया और आखिर में राजकाज के सुख-वैभव को तुच्छ समझकर अपने पुत्रों को राजकाज का भार सौंप, एकांत में एकाकी विचरण करने के लिए उद्यत हुए। उन्होंने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा :

'पुत्रो ! वह पिता पिता नहीं है जो अपने पुत्रों को परमात्म-शांति का उपदेश नहीं देता। वह माता माता नहीं है जो अपने पुत्रों को परमात्म-ज्ञान की तरफ नहीं लगाती। वे गुरु गुरु नहीं हैं जो अपने शिष्यों को ईश्वर के रास्ते नहीं लगाते। वह देवता देवता नहीं है जो अपने भक्त को ईश्वर की तरफ प्रेरित न करे।

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥

'जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फाँसी से नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।' **(श्रीमद्भागवत : ५.५.१८)**

पुत्रो ! यह मनुष्य-शरीर बड़ा दुर्लभ है। दो-पाँच बच्चों को जन्म देकर जीवन खत्म कर देना, यह कोई बड़ी बात नहीं है। ऐसे तो सुअर, भेड़, बकरी आदि भी बच्चे-बच्चियों को जन्म दे देते हैं। बड़ी बात तो यह है कि इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन को पाशवी आकर्षणों से बचाकर परमात्म-सुख, परमात्म-ज्ञान पा लें।'

*

जो विश्व की उपेक्षा करके राष्ट्र की बात करते हैं वे महायुद्धों को जन्म देते हैं। जो राष्ट्रहित की उपेक्षा करके जाति या समाज की बात उठाते हैं वे साम्प्रदायिक कलह जगाते हैं। जो जाति या समाज के हित की उपेक्षा करके अपने परिवार के हित में लगे हैं वे स्वार्थी हैं तथा जो परिवार का हित छोड़कर केवल अपना ही शारीरिक सुख मुख्य मानते हैं, वे तो पामर पुरुष हैं। ईश्वर और सच्चे आत्मवेत्ता गुरु की आज्ञा ऐसे लोगों को बंधन लगती है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १२५वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मार्च २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

भक्त प्रह्लाद की याद दिलाता : होली का पर्व

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सत्य एवं दृढ़ निष्ठा के प्रतिरूप भक्त प्रह्लाद की विजय और हिरण्यकशिपु की आसुरी वृत्ति तथा कपटरूपी होलिका की पराजय का पर्व है - होली। यह पर्व मानव को विघ्न-बाधाओं के बीच भी प्रह्लाद की तरह भगवन्निष्ठा टिकाये रखकर संसार से पार होने का संदेश देता है।

जो भक्त परब्रह्म परमात्मा में दृढ़ निष्ठावान हैं, उनके आगे प्रकृति अपना नियम बदल लेती है। अग्नि उन्हें जला नहीं सकती, पानी उन्हें डुबा नहीं सकता, हिंसक पशु उनके मित्र बन जाते हैं। समस्त प्रकृति उनकी दासी बन जाती है, उनके अनुकूल बन जाती है। इसीकी याद दिलानेवाला यह होली का पवित्र दिन है।

होली मात्र कंडे-लकड़ी के ढेर को जलाने का त्यौहार नहीं है बल्कि इसके साथ-साथ चित्त की दुर्बलता दूर करने का और मन की मलिन वासनाओं को जलाने का भी पवित्र दिन है। आज के दिन से विलासी वासनाओं का त्याग करके परमात्म-प्रेम, इष्टनिष्ठा, सहानुभूति, निर्भयता, स्वधर्मपालन, करुणा, दया, अहिंसा आदि दैवी गुणों का अपने जीवन में विकास करना चाहिए।

प्रह्लाद ने गजब की सहनशक्ति और भगवन्निष्ठा का परिचय दिया था। प्रह्लाद का पिता उसको भजन के लिए रोकता-टोकता था किंतु प्रह्लाद रुका नहीं, भगवद्भक्ति से हटा नहीं।

होलिकोत्सव के अवसर पर प्रह्लाद की याद आ ही जाती है। जो विघ्न-बाधा, रोग-शोक, भय और दुःख में भी अपने चित्त को व्यथित न होने दे, वरन् सदा चैतन्य के आनंद में अपने चित्त को आह्लादित रखे, उसका नाम है - प्रह्लाद।

हिरण्यकशिपु के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी जब प्रह्लाद भक्ति से न डिगा, तब उसने प्रह्लाद को मारने का काम अपनी बहन होलिका को सौंपा। आयोजन के अनुसार होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर लकड़ी के ढेर पर बैठ गयी और उस ढेर को आग लगा दी गयी।

भभुक... भभुक... आग धधकने लगी। होलिका सोच रही थी कि 'मुझे तो आग जलायेगी नहीं क्योंकि मुझे आग में न जलने का वरदान मिला हुआ है।' किंतु वरदान पायी हुई होलिका जलकर खाक हो गयी और प्रह्लाद को अग्निदेव ने शीतलता का अहसास कराया ! क्योंकि जहाँ दृढ़ आस्था, श्रेष्ठ एवं आह्लादित वृत्ति होती है, जहाँ ईश्वर-चिन्तन होता है वहाँ प्रकृति नियम भी बदल देती है। भक्त की रक्षा के लिए पंचभूत भी अपना स्वभाव बदल देते हैं। दुष्ट वृत्ति पर श्रेष्ठ वृत्ति की विजय की गवाही देता है यह प्रसंग।

आज भी देखा जाय तो संसार में भी लोग तप ही रहे हैं। कोई कामवासना के ताप में तप रहा है तो कोई क्रोध के ताप में, कोई लोभ में तप रहा है तो कोई मोह में, तो कोई अहंकार में तपा जा रहा है... ऐसे तपानेवाले संसार में भी भगवान के भक्त आह्लादित और आनंदित रहते हैं। यह प्रह्लाद की दृढ़ भगवद्भक्ति की ही तो महिमा है !

प्रह्लाद को तमाम यातनाएँ सहनी पड़ीं पर उसने भगवद्भक्ति न छोड़ी। भगवान सर्वत्र अणु-अणु में व्याप रहे हैं, यह उनकी दृढ़ निष्ठा डिगी नहीं। एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बुलाकर कहा : ''तू कहता है कि परमात्मा, भगवान सर्वत्र है तो मुझे तेरे भगवान का परिचय दे।''

प्रह्लाद : ''मैं परिचय क्या दूँ ? मेरा परमेश्वर सर्वत्र है। जैसे लकड़ी में अग्नि व्याप रही है, तिलों में तेल व्याप रहा है, दूध में सफेदी व्याप रही है ऐसे ही सारे विश्व में विश्वंभर व्याप रहा है। जिसकी स्मृति दृढ़ निष्ठा सहित होती है, विश्वंभर उसकी रक्षा करता है। सारे प्राणियों का पोषक वह परमात्मा ही है। जो

समस्त नर-नारियों में निवास करता है, उसीका नाम नारायण है । पिताजी ! आप भी उसी नारायण की शरण में जाइये ।''

''छोटा मुँह और बड़ी बात ! कहाँ है तेरा नारायण ? तेरा नारायण सबमें है तो क्या इस तपे हुए खंभे में भी है ?''

''हाँ, पिताजी !''

''अच्छा, इस आग से तपे हुए खंभे में भी तेरा नारायण व्याप्त है !''

''पिताजी ! अग्नि में नारायण की सत्ता न हो तो उसमें दाहक शक्ति भी नहीं हो सकती । पानी में उसकी चेतना न हो तो उसमें स्वाद या रस नहीं आ सकता । धरती में उसकी चेतना न हो तो बीज नहीं उग सकते । सूर्य में उसकी चेतना न हो तो वह प्रकाश नहीं दे सकता और चाँद में उसकी चेतना न हो तो वह शीतलता नहीं दे सकता ।

पिताजी ! माँ के शरीर में उसकी चेतना न हो तो वह वात्सल्य कहाँ से लायेगी ? बालक में भी उसकी चेतना न हो तो वह माँ को कैसे पहचानेगा ? जो चैतन्य है वह ज्ञानस्वरूप है । जो ज्ञानस्वरूप है वह सुखस्वरूप है और वही सर्वत्र है ।''

''चुप रह । मुझे उपदेश मत दे । तेरा नारायण सबमें है तो इस तपे हुए खंभे का आलिंगन कर । अगर वह इसमें है तो तेरी रक्षा करे ।''

प्रह्लाद ने पूर्वजन्म में तपस्या की हुई थी और गर्भावस्था में नारदजी का सत्संग सुना हुआ था। भगवान के प्रति उसकी निष्ठा पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी । प्रह्लाद ने जैसे ही खंभे का दृढ़ विश्वास से आलिंगन किया, खँभा टूट गया और भगवान नृसिंह अवतरित हो गये ।

नृसिंह अर्थात् आधा रूप मानव का और आधा सिंह का । भगवान को हिरण्यकशिपु को मारने के लिए नृसिंहरूप लेना पड़ा क्योंकि हिरण्यकशिपु ने तपस्या करके ब्रह्माजी से वरदान ले लिया था कि 'मैं न तो मनुष्य से मरूँ न पशु से । न देव से मरूँ न दानव से । न दिन में मरूँ न रात में । न घर के अंदर मरूँ न बाहर । न ऊपर मरूँ न नीचे । न अस्त्र से मरूँ न शस्त्र से ।'

भगवान नृसिंह ने हिरण्यकशिपु से कहा : ''तेरे सारे वरदान सुरक्षित होते हुए भी तेरी मृत्यु अवश्यंभावी है । अब मैं तुझे स्वधाम भेजता हूँ ।''

भगवान ने संध्या के समय भक्तराज प्रह्लाद को सतानेवाले हिरण्यकशिपु को द्वार की चौखट पर अपनी गोद में बिठाया और अपने तीक्ष्ण नखों से उसका वध कर दिया । फिर भी भगवान का क्रोध शांत न हुआ ।

कुपित नृसिंह भगवान को शांत करने के लिए देवताओं ने उनकी स्तुति की । किंतु देवताओं की स्तुति से भी आवेशावतार नृसिंह भगवान संतुष्ट नहीं हुए । तब देवताओं ने युक्ति लड़ायी और प्रह्लाद को आगे कर दिया । अपने प्यारे भक्त को देखकर भगवान का आवेश शांत हो गया । उन्होंने प्रह्लाद को अपनी गोद में ले लिया और बहुत स्नेह किया ।

जीव ईश्वर को चाहता है तो ईश्वर भी जीव को चाहता है । ऐसा कभी न मानें कि हम किसीके भोग्य हैं । तुम्हारा शरीर भले किसीका सेवक हो किंतु तुम्हारा चैतन्य किसीका भोग्य नहीं । तुम्हारा चैतन्य तो ईश्वरत्व के आनंद का भोग करनेवाला भोक्ता है । इस बात को उत्तम कोटि के तत्त्ववेत्ता महापुरुष पूर्णरूप से समझते हैं, जानते हैं ।

भगवान नृसिंह ने प्रह्लाद का स्नेहभरा आलिंगन किया और कहा : ''वत्स ! वरदान माँग ले । तुझे जो चाहिए, मैं दूँगा ।''

भगवान स्वयं वरदान माँगने के लिए कह रहे हैं किंतु कैसी उत्तम समझ है प्रह्लाद की ! वह कहता है : ''प्रभु ! आप कुछ माँगने के लिए कह रहे हैं ? संसार में ऐसा कौन-सा पदार्थ है जिसको पाकर जीव सदा के लिए सुखी हो जाय । जो भी मिलेगा वह एक दिन तो अवश्य छूट जायेगा । पिताजी को इतने वरदान मिले थे, इतना विशाल राज्य और बलवान शरीर मिला था । इतना सब पाकर भी उनको मरना पड़ा तो मैं कौन-सी चीज पाकर अमर हो जाऊँगा ? प्रभु ! आप अवश्य मेरी परीक्षा ले रहे हैं ।

जीवात्मा ऐसे ही संसार की तुच्छ चीजों में आसक्त है, दूसरा आप भी उसे संसारी चीजें देकर संसार के ही खिलौनों में आसक्त क्यों करेंगे ? परमात्मा से नश्वर चीजें माँगकर उनका भक्त अपने को धोखे में क्यों डालेगा ? जिसको परमात्मा के प्रति दृढ़ प्रेम है, वह तो उनसे उन्हींको माँगेगा । भगवन् ! आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं । अब मुझे क्या चाहिए ? आपके दर्शन हो गये, आपकी दृढ़ भक्ति एवं प्रीति मिल रही है और आपके सच्चिदानंद स्वभाव से

एकाकारता हो रही है तो अब मुझे किस वस्तु की कमी रही ?

नाथ ! मेरे हृदय में कभी भूलकर भी आपके सिवा किसी दूसरी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति की इच्छा-वासना आये तो कृपा करके आप उन दुष्ट इच्छा-वासनाओं को ही नष्ट कर दीजियेगा। मेरा मन आपके सिवा कहीं न लगे । अगर स्वप्न में भी मुझे नश्वर जगत की प्रीति या आसक्ति हो जाय तो हे प्रभु ! आप उसे हर लीजियेगा। हे हरि ! मुझे आपके स्वरूप का ही ज्ञान और वरदान चाहिए।

मैं तो आपसे आप ही को माँगता हूँ। आप जिसके हो जाते हो उसकी सेवा प्रकृति तो करती ही है, साथ में यक्ष, गंधर्व, किन्नर भी करते हैं। पुण्यात्मा साधक और भक्त भी आपके स्मरणमात्र से अपना भाग्य बना लेते हैं तो हमें अन्य चीज माँगने की जरूरत ही क्यों पड़ेगी ?

जिसके चित्त में वासनाएँ होती हैं, वह भोगों में पड़कर कर्मबंधन में फँसता है। उसका धैर्य टूट जाता है और विवेक क्षीण हो जाता है।

जो आपके मानस जप को छोड़कर नश्वर चीजें चाहता है वह कामी, क्रोधी, लोभी, मोही व अहंकारी बन जाता है और अपने मानवीय स्वभाव को छोड़ पशु जैसा जीवन बिताकर अंत में पशुयोनि को प्राप्त होता है।

किंतु जो आपको चाहता है, वह आपके स्वरूप को समझकर सदा के लिए आपमय हो जाता है, आपके विभु सच्चिदानंद स्वरूप को पा लेता है। चाहे शरीर उसी रूप में रहे लेकिन वह आपके स्वरूप से एक हो जाता है।

जो परमात्मा से स्वयं उन्हींको न माँगकर संसार की चीजें माँगता है उसकी कामनाएँ बढ़ती जाती हैं। उन वस्तुओं के न मिलने पर उसे क्रोध आता है और मिलने पर लोभ और मोह बढ़ता है। लोभ-मोह बढ़ने से उसके मन की शांति भंग हो जाती है, आनंद नष्ट होने लगता है। किंतु जो आपका ध्यान और चिन्तन करता है, उसको आत्मिक शांति और आत्मिक सामर्थ्य मिलता है। उसकी दुष्ट इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और आप नारायण के स्वरूप में वह निवास करने लगता है।

भगवन् ! मेरा सहज निवास आपके ज्ञान-ध्यान में है। उनसे दूर करनेवाली माया की चीजें आप मुझे क्यों देंगे ? शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि आदि सब बदलते रहते हैं। बदलने और मिटनेवाले शरीर के लिए मैं क्या माँगूँगा ? फिर भी मुझमें कभी माँगने की दुर्बुद्धि आ जाय तो मेरी उस दुर्बुद्धि को आप निवृत्त कर दीजियेगा। बस, मैं यही माँगता हूँ।

स्वयं परब्रह्म को छोड़कर उनसे और कुछ माँगना यह परब्रह्म का अपमान करना है। हे परमेश्वर ! मैं आपसे और कोई चीज माँगूँ - यह आपका अपमान है और मेरी मूढ़ता है। मेरी और आपकी प्रीति पर लांछन है। हे प्रभु ! मेरे चित्त में कभी नश्वर वासना उदित न हो। मुझे आपकी दृढ़ भक्ति और प्रीति मिले।''

भगवान नृसिंह ने प्रह्लाद का मस्तक चूमा, खूब स्नेह किया और कहा : ''वत्स ! मैं जानता हूँ कि तुझे भोगों की इच्छा नहीं है। **जिसने एक बार भी मेरे स्वरूप का ज्ञान और ध्यान प्राप्त कर लिया, उसे इन्द्रियों के भोग तुच्छ ही लगते हैं।**

हे प्रह्लाद ! तेरी इच्छा न होने पर भी तेरे प्रारब्ध और शुभकर्मों के फलस्वरूप तू एक मन्वंतर तक इन लोगों का सिद्ध राजा होकर शासन करेगा। तमाम सुख-सामग्री और यश होने पर भी तू उनसे उत्पन्न राज-काज के दोषों में न पड़ेगा। राज्य-वैभव और वाहवाही होते हुए भी तू उनमें नहीं डूबेगा। तेरे लिए सारे भोग सुलभ होते हुए भी तू उनका भोगी नहीं बनेगा, वरन् योगी की तरह निर्लेप होकर जियेगा। तुझे नित्य सत्संग मिलेगा और अंत में तू सत्पुरुषों की गति को प्राप्त होगा।''

दैत्यकुल में उत्पन्न भक्त प्रह्लाद की निष्ठा और समझ देखकर देवता भी उसकी प्रशंसा किये बिना न रह सके। प्रह्लाद को आशीर्वाद देकर वे सब अपने-अपने लोक में चले गये।

होली का उत्सव हमें यही पावन संदेश देता है कि हम भी अपने जीवन में आनेवाली विघ्न-बाधाओं का धैर्यपूर्वक सामना करें एवं कैसी भी विकट परिस्थिति हो, फिर भी प्रह्लाद की तरह अपनी श्रद्धा तथा आत्मिक-पारमार्थिक विश्वास को अडिग बनाये रखें।

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं, आगे बढ़नेवालों को ?
विपदाएँ कब रोक सकी हैं, पथ पर चलनेवालों को ?

*

भोग से योग की ओर !

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

आंध्रप्रदेश में एक बड़ा धनाढ्य सेठ था। उसके दो बेटे थे। समय पाकर सेठ का स्वर्गवास हो गया और उसकी पत्नी भी कुछ ही दिनों में चल बसी।

बड़े बेटे ने अपने पिता का कार्यभार सँभाल लिया। अपने छोटे भाई वेमना को वह बड़े लाड़-प्यार से रखने लगा। वेमना की भाभी लक्ष्मी वेमना को माँ से भी ज्यादा स्नेह करती थी।

वेमना देखने में बड़ा सुंदर और मधुर स्वभाव का था। माता-पिता का संयुक्त सुख और स्नेह उसे भाभी से मिलता था। वह भी अपनी भाभी को बहुत चाहता था। वह जितने रुपये माँगता उतने उसे भाभी से मिल जाया करते।

बड़ा भाई तो व्यापार में व्यस्त रहने लगा और छोटा भाई वेमना खुशामदखोरों के साथ घूमने लगा। उनके साथ भटकते-भटकते एक दिन वह वेश्या के द्वार तक पहुँच गया। वेश्या ने भी देखा कि ग्राहक मालदार है। उसने वेमना को अपने मोहपाश में फँसा लिया और वेमना कुकर्म के रास्ते चल पड़ा।

अभी वेमना की उम्र केवल १६-१७ साल की ही थी। वेश्या जो-जो माँगें उसके आगे रखती, भाभी से पैसे लेकर वह उन्हें पूरी कर देता। एक बार उस वेश्या ने हीरे-मोतियों से जड़ा हार, चूड़ियाँ और अँगूठी माँगी।

वेमना उस वेश्या के मोहपाश में पूरी तरह बँध चुका था। माँ से भी ज्यादा स्नेह करनेवाली भाभी जब सो गयी तब उसने धीरे-से भाभी के गले से हार उतारा और अँगूठी भी उतारने लगा। भाभी को पता चल गया कि मेरा देवर ही गहने उतार रहा है। 'उतारकर कहीं रख देगा' यह सोचकर वह चुपचाप सोने का बहाना करके पड़ी रही परंतु दूसरे दिन सुबह उठकर जब उसने देखा तो गहने गायब थे। वह समझ गयी कि वेमना को चोरी की आदत पड़ गयी है। भाभी ने मंगलसूत्र को छोड़कर बाकी के सब गहने उतारकर तिजोरी में रख दिये।

कुछ दिनों के बाद वेमना ने उस मंगलसूत्र को भी उतारने की कोशिश की। तब भाभी ने पूछा : ''सच बता, तू इनका क्या करता है ? कुछ दिन पहले भी तूने गहने उतारे थे, वे कहाँ गये ?''

वेमना ने झिझकते-झिझकते सारी बात बता दी। भाभी की आँखों से आँसू बरस पड़े; हृदय में करुणा और क्रोध, दोनों थे। वह सोचने लगी कि 'मात्र १६-१७ साल की उम्र में वेमना अपनी जिंदगी को तबाह करने के रास्ते पर चल पड़ा है। इतनी-सी उम्र में ही यह अपना तेज-बल सब नष्ट कर रहा है !'

किंतु भाभी कोई साधारण महिला नहीं थी, सत्संगी थी। उसने देवर को गलत रास्ते पर जाने से रोकने के लिए डाँट-फटकार की जगह विचार का सहारा लिया और देवर के जीवन में भी सद्विचार आ जाय - ऐसा प्रयत्न किया। भाभी ने कहा : ''मेरे लाल ! तू एक मंगलसूत्र चुराकर उसे देना चाहता है ? मैं तुझे पूरी तिजोरी खोलकर देती हूँ। तू मेरा देवर भी है और पुत्र भी। तू जितने गहने उसे देना चाहता है, ले जा किंतु मेरी एक बात मान ले।''

भाभी के हृदय में प्रेम और करुणा थी। वह दुराचार में फँसे वेमना को सदाचार के रास्ते पर लाना चाहती थी।

प्रेम में बड़ी ताकत होती है। शुद्ध हृदय का प्रेम बड़े-बड़ों को पिघला देता है। वेमना तो छोटा था। जो आदमी दंड से नहीं सुधरता, वह प्रेम से सुधर सकता है।

वेमना भाभी की बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। भाभी ने आगे कहा :

''बेटा ! एक काम करना। वह तो वेश्या ठहरी। तू जैसा कहेगा वह वैसा ही करेगी। उसे कहना कि 'मैं बहुत सारे हीरे-जवाहरात जड़े गहने लाया हूँ, किंतु एक शर्त है कि तू नग्न होकर सिर नीचे कर

और अपने घुटनों के बीच से हाथ निकालकर पीछे से ले, तब मैं तुझे गहने दूँगा।' तू अपनी इस शर्त पर दृढ़ रहना। फिर जब वह इस तरह तेरे से गहने लेने लगे तब तू काली माता का स्मरण करके उनसे प्रार्थना करना कि 'हे माँ ! मुझे विचार दो। मुझे भक्ति दो। माँ ! किस अंधे आवेश में, किस अंधी कामना में मैं गिर रहा हूँ ! मुझे कामविकार से बचाओ। माँ, माँ ! मुझे सद्बुद्धि दो।' बेटा, वेमना ! माँ काली तेरे हृदय को ज्ञान के प्रकाश से भर देंगी।'' ऐसा कहकर भाभी रो पड़ी।

वेमना का हृदय पिघल उठा किंतु भीतर विकार भी जोर मार रहा था। उसने कहा : ''भाभी ! मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि जब तक वह तुम्हारे द्वारा बतायी गयी शर्त का पालन न करेगी, तब तक मैं उसे गहने नहीं दूँगा।''

वेमना वेश्या के पास गया और उसके आगे शर्त रखी। शर्त के अनुसार जब वेश्या गहने लेने के लिए तैयार हुई, तब वेमना ने माँ काली से सद्बुद्धि के लिए प्रार्थना की। भाभी की शुभ भावना और माँ काली की कृपा से वेमना का विवेक जाग उठा कि 'इन मल-मूत्र से भरे स्थानों के लिए मैं काम से अंधा हो रहा हूँ ? इन गंदे अंगों के पीछे मैं अपनी जिंदगी तबाह किये जा रहा हूँ ?...' यह विचार आते ही वह क्षणभर के लिए घबरा गया और धरती पकड़कर बैठ गया। फिर तुरंत ही गहने लेकर भागते हुए भाभी के पास आया और भाभी के चरणों में गिर पड़ा।

वेमना रोते हुए अपनी मातृस्वरूपा भाभी से कहने लगा : ''माँ ! माँ ! माँ ! तू धन्य है ! तूने मुझे ज्ञान का प्रकाश दिया। तेरी ही करुणा-कृपा से मैं असलियत को जान पाया। तू मुझे आशीर्वाद दे कि अब मैं सदा नेक रास्ते पर चलूँ।''

भाभी : ''बेटा ! मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। जिस माँ काली ने तुझे काम-विकार के रास्ते से हटाकर राम के रास्ते लगाया है, अब उसी माँ काली की शरण में जा। गाँव के बाहर जो काली का मंदिर है, उसमें जाकर माँ काली को पुकार कि 'माँ ! मुझे विवेक दे, वैराग्य दे, ज्ञान दे...। हे जगज्जननी माँ ! हे अंबिका ! हे काली ! तू मेरी रक्षा कर। मुझे मार्गदर्शन दे।''

वेमना मध्यरात्रि में ही माँ काली के मंदिर में चला गया। उसका चित्त निर्दोष था। कुसंगवश दोषों का संग हुआ लेकिन मातृहृदया भाभी के विवेकयुक्त मार्गदर्शन ने उसके जीवन की राह बदल दी और निर्दोष हृदय के प्रायश्चित ने सारे दोष धो डाले। वेमना के सच्चे हृदय की प्रार्थना, प्रभातकाल होते-होते ही माँ काली को प्रकट करने में सफल हो गयी !

वेमना ने प्रार्थना की : 'माँ ! तू मुझे योग की दीक्षा दे, ज्ञान की दीक्षा दे, मेरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश कर दे।'

उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर माँ काली ने उसे योग की दीक्षा दे दी और माँ के बताये निर्देश के अनुसार वह लग गया योग-साधना में। प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि करते-करते उसकी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत होने लगीं। कुछ सिद्धियाँ भी आ गयीं, किंतु वेमना ने माँ से सुना था कि 'सिद्धियों का प्रदर्शन जल्दी नहीं करना, पहले आत्मसिद्धि पाना।'

योग-साधना करते-करते उसका चित्त निष्काम होने लगा, कवित्व शक्ति जगने लगी। शास्त्रों के रहस्य उसके चित्त में अपने-आप प्रकट होने लगे। उसकी वाणी मानों, वेदवाणी हो गयी। उसके दर्शन से लोगों के चित्त में शांति और आनंद छाने लगा। वेमना वेमना न रहा, योगीराज वेमना होकर प्रसिद्ध हो गया।

आगे चलकर प्रसिद्धि इतनी बढ़ गयी कि भीड़भाड़ से ऊबकर एक दिन योगीराज वेमना आश्रम में बताये बिना ही अज्ञातवास के लिए चल दिये।

चलते-चलते रात को वे किसी गाँव में पहुँचे। ठंड के दिन थे। किसी आश्रय की जरूरत थी। वेमना के वस्त्र साधारण थे, हाथ में कमंडलु था। उन्होंने किसी ब्राह्मण के घर जाकर पूछा : ''क्या आप एक रात्रि के लिए मुझे अतिथि बनाओगे ?''

ब्राह्मण कर्मकांडी और बाह्य शुद्धि का आग्रही था, वेमना बड़े साधारण लग रहे थे। ब्राह्मण नाक-भौं सिकोड़ते हुए वेमना को आश्रय देने के लिए सहमत हो गया।

वेमना योग की ऐसी यात्रा कर चुके थे कि नींद खुलते ही उनकी वृत्ति परब्रह्म परमात्मा के ध्यान

में चली जाती थी । नींद खुलते ही वृत्ति अगर भगवान में चली जाती है तो उस समय स्नानादि के लिए तुरंत बिस्तर त्यागने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। ५-२५ मिनट, जितना समय शांति और ध्यान में जाता है, अच्छा है।

दिनभर चलने के कारण वेमना थके थे, अतः उन्हें अच्छी नींद आ गयी। प्रभात को उठे तो उनकी वृत्ति परमात्मा में चली गयी। ब्राह्मण स्नानादि से पवित्र हो भगवान की पूजा करने लगा। वह कभी घंटी बजाता तो कभी आरती करता, साथ ही बार-बार महाराज की तरफ नजर डालता कि कैसा बाबा है ! ब्राह्मण वेमना की गिनती भी ऐरे-गैरे साधुओं में करने लगा।

वेमना सो नहीं रहे थे किंतु सूर्योदय तक लेटे रहे। उन्हें सूर्योदय तक लेटे देखकर ब्राह्मण के अंदर क्रोध भी बढ़ता जा रहा था कि कैसा बाबा है ! ब्राह्मण के मन की उलझन वेमना समझ गये। उन्होंने अपनी योगशक्ति का थोड़ा चमत्कार दिखाना चाहा।

जैसे ही सूर्योदय हुआ, वेमना शौचालय नहीं गये अपितु नन्हे शिशु की तरह बिस्तर पर ही शौच कर दी।

यह देख ब्राह्मण चिल्ला उठा कि 'ये साधु के लक्षण हैं क्या ? यह कोई साधु है कि दुष्ट ?'

वेमना के चित्त की समता का पता उस कर्मकांडी ब्राह्मण को कैसे लगता ? वेमना के योग-सामर्थ्य से भी वह अपरिचित था। उसको जितना बरसना था, बरस चुका, तभी वेमना ने संकल्प करके अपनी विष्ठा को सुवर्णरूप में बदल दिया !

ब्राह्मण ने चिढ़ते हुए बिस्तर की तरफ देखा तो लगा कि विष्ठा होगी, किंतु क्या देखता है : 'अरे, यह तो सोना है !' सोना देखकर ब्राह्मण दंग रह गया और जिन बाबा पर गालियों की बौछार कर रहा था उन्हींके चरणों में गिर पड़ा। कहाँ तो ब्राह्मण सोच रहा था कि 'इस अभागे को मैंने क्यों रखा ?' और कहाँ अब उनके लिए सुंदर व्यवस्था करने लगा : 'महाराज ! विराजिये, यह खाइये, यह लीजिये...।'

वेमना : ''बस, अब हम चलते हैं।''

ब्राह्मण प्रार्थना करने लगा : ''नहीं, प्रभु ! यह घर आपका ही है।''

प्रीति रीति सब अर्थ की, परमारथ की नाहिं।
कहै कबीर परमारथी, बिरला कोई कलि माहिं॥

अर्थ से अर्थात् धन से प्रीति करनेवाले तो बहुत होते हैं, किंतु परमार्थ से प्रीति करनेवाला तो कोई विरला ही होता है।

ब्राह्मण ने बहुत कुछ प्रीति-रीति दिखायी लेकिन वेमना जानते थे कि प्रीति-रीति सब अर्थ की (स्वार्थ की) है। वे वहाँ से चल दिये। उनके सत्संग से **'वेमना योगदर्शनम्'** और **'वेमना तत्त्वज्ञानम्'** - ये दो पुस्तकें संकलित हुईं। आज भी आंध्रप्रदेश के भक्त लोग इन पुस्तकों को पढ़कर योग और ज्ञान के रास्ते पर चलने की प्रेरणा पाते हैं।

कहाँ तो वेश्या के मोह में फँसनेवाला वेमना और कहाँ करुणामयी भाभी ने सही रास्ते पर लाने का प्रयास किया, माँ काली से दीक्षा मिली, चला योग व ज्ञान के रास्ते पर और भगवदीय शक्तियाँ पा लीं, भगवत्साक्षात्कार कर लिया एवं कइयों को भगवान के रास्ते पर लगाया। कई व्यसनी दुराचारियों के जीवन को तार दिया। जिससे वे संत वेमना होकर आज भी पूजे जा रहे हैं !

हे मानव ! तुझमें अद्भुत सामर्थ्य है ! अनेक संभावनाएँ छुपी हुई हैं ! जरूरत है सच्ची प्यास जगाने की। खोज लो किन्हीं ब्रह्मवेत्ता महापुरुष को और चल पड़ो उनके बताये मार्ग पर तो तुम्हारे लिए भी उस अनंत के सामर्थ्य का द्वार सहज ही खुल जायेगा... करो हिम्मत !

धन्य है वेमनाजी की तत्परता !

अमीरी की तो ऐसी की कि सब जर लुटा बैठे।
फकीरी की तो ऐसी की कि गुरु के दर पर आ बैठे॥

वेमनाजी की वाणी सुनो :

गुरु डनग धेनुषै तगु
वर शिष्युडु वत्समेगुचु वर्तिपंगा
दरि कलिगि नप्पुडो सगुनु
निरुपम लक्ष्यामृतंबु निजमुग वेमा !

'गुरु कामधेनु चेला बछड़ा
जो जाता जब क्षुधा से आवृत
गुरु सम्मुख, तब गुरु देता है
रे अनुपम ज्ञान रूप अमृत।'

- वेमना की वाणी

शिवस्वरूप संत

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सबमें अपने आत्मस्वरूप के दर्शन करनेवाले महापुरुषों की लीलाओं को समझ पाना सामान्यजन के लिए संभव ही नहीं है। इन्हें तो वे ही जान सकते हैं जिन्हें वे कृपा करके समझा दें।

संत तुलसीदासजी ने कहा भी है :

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस रेलगाड़ी से कहीं जा रहे थे। मार्ग में किसी जगह पर गाड़ी को सिग्नल नहीं मिला तो गाड़ी जंगल में ही रुक गयी। वहाँ बिलीपत्र का पेड़ देखकर उन्हें लगा कि 'चलो, भगवान शिव की पूजा के लिए बिलीपत्र ले लें।' वे गाड़ी से उतरे और कुछ बिलीपत्र तोड़े। फिर सोचा कि 'बिलीपत्र लेकर जा तो रहा हूँ किंतु यहाँ पर कोई मंदिर तो है नहीं। पूजा सुबह करनी चाहिए परंतु गाड़ी तो शाम को पहुँचेगी।'

फिर सोचा कि 'मंदिर नहीं है तो क्या हुआ ? शिव तो यहाँ बैठा ही है और वे **'ॐ नमः शिवाय'** का उच्चारण करते हुए अपने ही सिर पर बिलीपत्र चढ़ाने लगे। बिलीपत्र चढ़ाते-चढ़ाते वे ध्यानस्थ हो गये।

गाड़ी के चलने का समय हुआ, किंतु वह उन शिवस्वरूप को लिये बिना कैसे जाती ? शिष्य ने आकर उनसे कहा : 'गुरुवर, उठिये। गाड़ी को सिग्नल मिल गया है।' तब वे उठकर गाड़ी में बैठे।

✲

रामकृष्ण परमहंस अधिकतर भावसमाधि में निमग्न रहा करते थे। इससे लोग उन्हें पागल कहते। एक बार वे अपने ही फोटो को देखकर बार-बार प्रणाम करने लगे। लोगों ने कहा : ''अब तो हद हो गयी ! आज तक तो सुनते थे कि रामकृष्ण पागल हैं लेकिन पागलपन की भी कोई हद होती है। पागल भी अपने फोटो पर इतना कुर्बान नहीं होता।''

किसीने उनसे पूछा : ''ठाकुर ! आप यह क्या कर रहे हैं ?''

''प्रभु के दर्शन कर रहा हूँ, प्रभु की पूजा कर रहा हूँ।''

''यह तो आपका ही फोटो है।''

''नहीं, यह मेरा फोटो नहीं है। जिसको तुम 'मैं' बोलते हो उसका फोटो नहीं है। प्रभु का ही फोटो है। मैं जब खो गया था उन क्षणों में यह फोटो लिया गया होगा।''

ऐसी भी घड़ी होती है जब देहाध्यास नहीं होता, लवलेश के लिए भी 'मैं देह हूँ' - ऐसा चिन्तन नहीं होता। जो 'मैं' चैतन्य आत्मा-परमात्मा है, उसी 'मैं' की मधुरता होती है। इसलिए जब महापुरुष आत्मध्यान में होते हैं तब लिया गया चित्र विशेष लाभदायी होता है। फिर वह केवल चित्र या फोटो नहीं रहता।

सम्पूर्ण जड़-चेतन में परमात्म-सत्ता व्याप्त है। जब महापुरुष परमात्म-सत्ता में, चिदानंद परमात्मा में ध्यानस्थ होते हैं, उन क्षणों में लिये गये फोटो को देखने से देखनेवाले को असीम लाभ होता है। तब निमित्त तो फोटो का होता है किंतु दर्शक का तार भूताकाश से नहीं, वरन् चिदाकाश से जुड़ जाता है। उसकी आभा (ओरा) विकसित हो जाती है और सात्त्विकता बढ़ जाती है।

डॉक्टर डायमंड ने बायोकायनेसियोलोजी के प्रयोगों से सिद्ध किया है कि संत-महापुरुषों के चित्रों को देखने से जीवनशक्ति का विकास होता है और अहंकारी, विलासी मनुष्य का चित्र देखने से जीवनशक्ति का ह्रास होता है।

एकलव्य के पास उसके गुरु द्रोणाचार्य का हूबहू फोटो नहीं था। उसने गुरुदेव को देखा और वन में जाकर गारे-मिट्टी से उनकी मूर्ति बनायी। उस मूर्ति को वह एकटक देखता रहता और वहाँ से प्रेरणा पाता था। इससे वह धनुर्विद्या में इतना आगे निकल गया कि अर्जुन भी दंग रह गया। एक बार उसने भौंकते कुत्ते के मुँह में सात बाण इस तरह मारे कि कुत्ते को चोट भी न लगी और उसका भौंकना भी बंद हो गया !

मूर्ति भले बाहर से सबको एक जैसी दिखे, किंतु उसमें दर्शक की अपनी भावना और चैतन्य की सत्ता का समन्वय काम देता है। श्रद्धा और विश्वास से गुरु या भगवान की मूर्ति पर त्राटक करने से विशेष लाभ होता है।

समय का सदुपयोग

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

एक आदमी रेलगाड़ी से मुसाफिरी कर रहा था। जब रेलगाड़ी अगले स्टेशन पर जाकर रुकी तो उसने देखा कि इंजन चालक कुछ लिख रहा है। उस आदमी ने उससे पूछा : ''तुम क्या लिख रहे हो ?''

इंजन चालक : ''यहाँ से रेलगाड़ी कितने बजे रवाना होगी, यह लिख रहा हूँ क्योंकि मुझे रेलगाड़ी को फलाने स्टेशन पर इतने बजे पहुँचाना है। अगर मैं एक मिनट की भी देरी करता हूँ तो मुझे रेलगाड़ी में बैठे हुए २ हजार यात्रियों के २ हजार मिनटों को बरबाद करने का पाप लगेगा।''

समय का कितना महत्त्व है ! समय बीता जा रहा है। वह किसीकी राह नहीं देखता। **खोया हुआ राजपाट फिर से पाया जा सकता है। हारी हुई कुर्सी चुनाव जीतने पर नेता लोग फिर से पा लेते हैं। गँवाया हुआ धन लोग फिर से कमा लेते हैं। बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य फिर से सुदृढ़ कर लेते हैं। खोई हुई इज्जत भी लोग सत्कर्म करके फिर से अर्जित कर लेते हैं। किंतु बीते हुए समय को आज तक कोई वापस नहीं ला पाया।**

एक चित्रकार ने विचित्र चित्र बनाया। वह चित्र बड़ा विलक्षण था क्योंकि उसमें चित्रित पुरुष का मुँह बालों से ढँका हुआ था। वैसे तो मनुष्य के सिर पर बाल रहते हैं और आगे से ललाट खुला रहता है, किंतु इस पुरुष को आगे बाल थे और पीछे टाल थी। उसके पैरों में पंख लगे हुए थे। लोगों ने चित्रकार से पूछा : ''ऐसा चित्र किस निमित्त को लेकर बनाया है ? यह किसकी खबर दे रहा है ?''

चित्रकार : ''यह समय का चित्र है। समय आता है मुँह ढँककर, पता नहीं चलता कि कौन-सा समय है। बीतता है टाल की तरह, पता ही नहीं चलता कि कितना समय बीत गया और जाता है तो मानों, पैरों में पंख लगाकर उड़ जाता है।''

बचपन आया और बचपन के खेल पूरे हुए-न-हुए कि जवानी आ जाती है। जवानी का जोश दिखा-न-दिखा कि बुढ़ापा आकर जीवन पर हस्ताक्षर कर देता है और बुढ़ापा कब मृत्यु में बदल जाय, कोई पता नहीं।

समय देकर आज तक आपने जो कुछ भी पाया, उन सबको लौटाकर भी आप बीता हुआ समय वापस नहीं ला सकते। इसलिए अपने समय का खूब-खूब सदुपयोग कीजिये। अथर्ववेद में आता है : **कालो अश्वो वहति।** समयरूपी घोड़ा भागा जा रहा है अर्थात् वह किसीका इंतजार नहीं करता।

हे मानव ! तू समय काटने के लिए न जी बल्कि फासला काटने के लिए जी। परमात्मा और तेरे बीच जो फासला है उस फासले को काटने के लिए जी। तू ऐसा मत सोच कि 'हाय ! मुझे रोटी कौन देगा ? अब मैं क्या करूँ ?' दो रोटी के लिए तेरा जन्म नहीं हुआ है। रोटी तो भगवान देंगे, देंगे और देंगे ही।

मुर्दे को प्रभु देत है कपड़ा लकड़ा आग।
जिंदा नर चिन्ता करे उसके बड़े अभाग॥

तू चिन्ता मत कर, चिन्तन कर कि 'मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे जब मैं आत्मा-परमात्मा को पा लूँगा ? कब मुझे सुख और दुःख स्वप्न के समान लगने लगेंगे ? कब मैं गुरुज्ञान, ब्रह्मज्ञान को पचाकर मुक्त हो जाऊँगा ? कब मैं अपने सच्चिदानंद स्वरूप में जागूँगा ?'

आपको पता है ?

''हमारा अधिकांश समय भूतकाल के चिन्तन और भविष्य की कल्पनाओं में व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है, जबकि बीती बातों के चिन्तन से कोई लाभ नहीं होता और भविष्य की कल्पनाओं में उलझने से कुछ हाथ नहीं लगता। इसलिए सावधान रहें कि व्यर्थ चिन्तन और कपोल कल्पनाएँ आपका अनमोल समय न खा जायें। वर्तमान का सदुपयोग करना सीखें और सत्यस्वरूप में जगें। मरने-मिटनेवाले देह के पीछे दीवाने न बनें। अमिट में आइये, अमिट स्वरूप को पाइये।

करोगे न हिम्मत ! जीवन में कोई छोटा-मोटा संयम-नियम लो और उसे किसी भी अवस्था में तोड़ो नहीं। फिर देखो, इस छोटे-मोटे नियम से कैसी दृढ़ता आती है, सत्यस्वरूप में स्थित होने का कैसा सामर्थ्य आता है।'' – परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

...दानं केवलं कलियुगे

ऐश्वर्य चाहनेवाला मनुष्य इन्द्र की पूजा करे। ब्रह्मतेज और ज्ञान चाहनेवाला ब्रह्माजी की आराधना करे। आरोग्य की अभिलाषा रखनेवाला सूर्य की, धन की कामनावाला अग्नि की तथा कर्मों की सिद्धि चाहनेवाला गणेशजी का पूजन करे। जो भग (कांति) चाहता हो वह चन्द्रमा की, बल चाहनेवाला वायु की तथा सम्पूर्ण संसार-बंधन से छूटने की अभिलाषा रखनेवाला मनुष्य यत्नपूर्वक श्रीहरि की आराधना करे। जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरीय ज्ञान इन तीनों की इच्छा रखता हो, वह यत्न करके देवताओं के स्वामी महादेवजी की अर्चना करे। जो महान भोग तथा विविध प्रकार के ज्ञान चाहते हैं, वे भोगी पुरुष श्री भूतनाथ महेश्वर तथा भगवान श्रीविष्णु की भी पूजा करते हैं।

जल देनेवाले मनुष्य को तृप्ति मिलती है। तेल-दान करनेवाले को अनुकूल संतान और दीप-दान करने से उत्तम नेत्रों की प्राप्ति होती है। भूमि-दान करनेवालों को सब कुछ सुलभ होता है, सुवर्ण-दाता को दीर्घायु प्राप्त होती है। गृह-दान करनेवाले को श्रेष्ठ भवन और चाँदी-दान करनेवाले को उत्तम रूप मिलता है। वस्त्र-दान करनेवाला चन्द्रमा के लोक में जाता है। अश्व-दान करनेवाले को उत्तम सवारी मिलती है। अन्न-दाता को अभीष्ट सम्पत्ति और गोदान करनेवाले को सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। सवारी और शय्या का दान करनेवाले पुरुष को पत्नी मिलती है। अभय-दान करनेवाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है। धान्य-दाता को सनातन सुख और ब्रह्म(वेद)-दान करनेवाले को शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

जो वेदविद्या-सम्पन्न ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार अनाज देता है, वह मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग का सुख भोगता है। गौओं को अन्न देने से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है। ईंधन-दान करने से मनुष्य की जठराग्नि प्रदीप्त होती है। जो रोगी के रोग को शांत करने के लिए उसे औषध, तेल और आहार प्रदान करता है, वह रोगहीन, सुखी और दीर्घायु होता है। संसार में जो-जो वस्तुएँ अत्यंत प्रिय मानी गयी हैं तथा जो मनुष्य के घर में अपेक्षित हैं, उन्हींको यदि अक्षय बनाने की इच्छा हो तो गुणवान ब्राह्मण को उनका दान करना चाहिए। अयन-परिवर्तन के दिन, विषुव नामक योग आने पर, चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में तथा संक्रांति आदि के अवसरों पर दिया हुआ दान अक्षय होता है। प्रयाग आदि तीर्थों, पुण्यमन्दिरों, नदियों तथा वनों में भी दान करके मनुष्य अक्षय फल का भागी होता है। प्राणियों के लिए इस संसार में दानधर्म से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष स्वर्ग की प्राप्ति के लिए तथा मुमुक्षु पुरुष पापों के शमन के लिए प्रतिदिन सात्त्विक ब्राह्मणों को दान देते रहें।

जो पापात्मा मानव गौ, ब्राह्मण, अग्नि और देवता के लिए दी जानेवाली वस्तु को मोहवश रोक देता है, उसे पशु-पक्षियों की योनि में जाना पड़ता है। जो ब्राह्मण स्वाध्यायशील, विद्वान, जितेन्द्रिय तथा सत्य और संयम से युक्त हों, उन्हें दान देना चाहिए। जो सम्मानपूर्वक देता है और जो सम्मानपूर्वक लेता है, वे दोनों स्वर्ग में जाते हैं। इसके विपरीत आचरण करने पर उन्हें नरक में गिरना पड़ता है। यदि अविद्वान ब्राह्मण चाँदी, सोना, गौ, घोड़ा, पृथ्वी और तिल आदि दान में ले तो वह सूखे ईंधन की भाँति भस्म हो जाता है।

अपनी जीविका-वृत्ति को कम करने की ही इच्छा रखे, धन बढ़ाने की चेष्टा न करे, धन के लोभ में फँसा हुआ ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से ही भ्रष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण वेदों को पढ़कर और सब प्रकार के यज्ञों का पुण्य पाकर भी ब्राह्मण उस गति को

नहीं पा सकता, जिसे वह संतोष से पा लेता है। दान लेने की रुचि न रखे। जीवन-निर्वाह के लिए जितना आवश्यक है, उससे अधिक धन स्वीकार करनेवाला ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त होता है। जो संतोष नहीं धारण करता, वह स्वर्गलोक पाने का अधिकारी नहीं है। वह लोभवश प्राणियों को उद्विग्न करता है। जैसी स्थिति चोर की है, वैसी ही उसकी भी है। गुरुजनों और भृत्यजनों (सेवकों) के उद्धार की इच्छा रखनेवाला पुरुष देवताओं और अतिथियों का तर्पण करने के लिए सब ओर से प्रतिग्रह ले, किंतु उसे अपनी तृप्ति का साधन न बनाये, स्वयं उसका उपभोग न करे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष मन को वश में करके देवताओं और अतिथियों का पूजन करता हुआ जितेन्द्रियभाव से रहे तो वह परम पद को प्राप्त होता है।

('पद्मपुराण' से)

✻

गीता प्रश्नोत्तरी

११. गीता के अनुसार मानवीय सम्बन्ध किस प्रकार का है? १२. गीता के अनुसार क्या कोई आत्मा को मार सकता है? १३. गीता के अनुसार भगवान किस पक्ष में हैं? १४. अर्जुन ने 'मैं युद्ध नहीं करूँगा' क्यों कहा था? १५. कर्मफल-त्याग से क्या तात्पर्य है? १६. स्मरणशक्ति किससे नष्ट होती है? १७. गीता में कितने श्लोक हैं? १८. गीता के अनुसार श्रद्धा कितने प्रकार की होती है? १९. ओंकार किसका स्वरूप है? २०. "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।" यह किसका कथन है?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर : (१) अठारह (२) वेदव्यासजी (३) ब्रह्मज्ञान अथवा तत्त्वज्ञान (४) अर्जुन को (५) हनुमानजी (६) भीष्म पितामह (७) देवदत्त (८) श्रीकृष्ण (९) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश (१०) स्वर्ग में जाता है।

एकादशी माहात्म्य

[पापमोचनी एकादशी : २८ मार्च २००३]

महाराज युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से चैत्र (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष की एकादशी के बारे में जानने की इच्छा प्रकट की तो वे बोले : 'राजेन्द्र! मैं तुम्हें इस विषय में एक पापनाशक उपाख्यान सुनाऊँगा, जिसे चक्रवर्ती नरेश मान्धाता के पूछने पर महर्षि लोमश ने बताया था।'

मान्धाता ने पूछा : भगवन्! मैं लोगों के हित की इच्छा से यह सुनना चाहता हूँ कि चैत्र मास के कृष्णपक्ष में किस नाम की एकादशी होती है, उसकी क्या विधि है तथा उससे किस फल की प्राप्ति होती है? कृपया ये सब बातें मुझे बताइये।

लोमशजी ने कहा : नृपश्रेष्ठ! पूर्वकाल की बात है। अप्सराओं से सेवित चैत्ररथ नामक वन में, जहाँ गन्धर्वों की कन्याएँ अपने किंकरों के साथ बाजे बजाती हुई विहार करती हैं, मंजुघोषा नामक अप्सरा मुनिवर मेधावी को मोहित करने के लिए गयी। वे महर्षि चैत्ररथ वन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। मंजुघोषा मुनि के भय से आश्रम से एक कोस दूर ही ठहर गयी और सुन्दर ढंग से वीणा बजाती हुई मधुर गीत गाने लगी। मुनिश्रेष्ठ मेधावी घूमते हुए उधर जा निकले और उस सुन्दर अप्सरा को इस प्रकार गान करते देख बरबस ही मोह के वशीभूत हो गये। मुनि की ऐसी अवस्था देख मंजुघोषा उनके समीप आयी और वीणा नीचे रखकर उनका आलिंगन करने लगी। मेधावी भी उसके साथ रमण करने लगे। रात और दिन का भी

उन्हें भान न रहा। इस प्रकार उन्हें बहुत दिन व्यतीत हो गये। मंजुघोषा देवलोक में जाने को तैयार हुई। जाते समय उसने मुनिश्रेष्ठ मेधावी से कहा : 'ब्रह्मन्! अब मुझे अपने देश जाने की आज्ञा दीजिये।'

मेधावी बोले : देवी! जब तक सवेरे की संध्या न हो जाय तब तक मेरे ही पास ठहरो।

अप्सरा ने कहा : विप्रवर! अब तक न जाने कितनी ही संध्याएँ चली गयीं! मुझ पर कृपा करके बीते हुए समय का विचार तो कीजिये!

लोमशजी कहते हैं : राजन्! अप्सरा की बात सुनकर मेधावी चकित हो उठे। उस समय उन्होंने बीते हुए समय का हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि उसके साथ रहते हुए उन्हें सत्तावन वर्ष हो गये हैं। उसे अपनी तपस्या का विनाश करनेवाली जानकर मुनि को उस पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने शाप देते हुए कहा : 'पापिनी! तू पिशाची हो जा।' मुनि के शाप से दग्ध होकर वह विनय से नतमस्तक हो बोली : 'विप्रवर! इस शाप से मेरा उद्धार कीजिये। सात वाक्य बोलने या सात पद साथ-साथ चलनेमात्र से ही सत्पुरुषों के साथ मैत्री हो जाती है। ब्रह्मन्! मैंने तो आपके साथ अनेक वर्ष व्यतीत किये हैं, अतः स्वामिन्! मुझ पर कृपा कीजिये।'

मुनि बोले : भद्रे! क्या करूँ? तुमने मेरी बहुत बड़ी तपस्या नष्ट कर डाली है। फिर भी सुनो। चैत्र कृष्णपक्ष में जो शुभ एकादशी आती है उसका नाम है 'पापमोचनी।' वह शाप से उद्धार करनेवाली तथा सब पापों का क्षय करनेवाली है। सुन्दरी! उसीका व्रत करने पर तुम्हारी पिशाचता दूर होगी।

ऐसा कहकर मेधावी अपने पिता मुनिवर च्यवन के आश्रम पर गये। उन्हें आया देख च्यवन ने पूछा : 'बेटा! यह क्या किया? तुमने तो अपने पुण्य का नाश कर डाला!'

मेधावी बोले : पिताजी! मैंने अप्सरा के साथ रमण करने का पातक किया है। अब आप ही कोई ऐसा प्रायश्चित बताइये, जिससे इस पातक का नाश हो जाय।

च्यवन ने कहा : बेटा! चैत्र कृष्णपक्ष में जो 'पापमोचनी एकादशी' आती है, उसका व्रत करने पर पापराशि का विनाश हो जायेगा।

पिता का यह कथन सुनकर मेधावी ने उस व्रत का अनुष्ठान किया। इससे उनका पाप नष्ट हो गया और वे पुनः तपस्या से परिपूर्ण हो गये। इसी प्रकार मंजुघोषा ने भी इस उत्तम व्रत का पालन किया। 'पापमोचनी' का व्रत करने के कारण वह पिशाचयोनि से मुक्त हुई और दिव्य रूपधारिणी श्रेष्ठ अप्सरा होकर स्वर्गलोक में चली गयी।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन्! जो श्रेष्ठ मनुष्य 'पापमोचनी एकादशी' का व्रत करते हैं उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से सहस्र गौदान का फल मिलता है। ब्रह्महत्या, सुवर्ण की चोरी, सुरापान और गुरुपत्नीगमन करनेवाले महापातकी भी इस व्रत को करने से पापमुक्त हो जाते हैं। यह व्रत बहुत पुण्यमय है। *('पद्मपुराण' से)*

विवेक, वैराग्य आदि साधनों से इच्छा का सर्वथा विनाश करना चाहिए। इच्छा का सम्बन्ध जहाँ-जहाँ है वहाँ-वहाँ पाप, पुण्य, दुःखराशियाँ और लम्बी पीड़ाओं से युक्त बंधन को हाजिर ही समझो। पुरुष की आंतरिक इच्छा ज्यों-ज्यों शांत होती जाती है, त्यों-त्यों मोक्ष के लिए उसका कल्याणकारक साधन बढ़ता जाता है। विवेकहीन इच्छा को पोसना, उसे पूर्ण करना यह तो संसाररूपी विषवृक्ष को पानी से सींचने के समान है।

❋ ऋषि प्रसाद पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि ऋषि प्रसाद पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक / रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में यह नहीं लिखा होगा, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

❋ नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।

गीता की शिक्षा

✲ ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ✲

१. 'श्रीमद्भगवद्गीता' की शिक्षा क्या है ? जो गीता बताती है वही सब कुछ है। वही है दृष्टा, वही है अनुमन्ता; भोक्ता, महेश्वर और तुम भी वही हो। उसे जानो। दृष्टा का अर्थ है साक्षी। वह सर्वत्र साक्षीस्वरूप में मौजूद है, अतः वह दृष्टा है। वह अन्तर्यामी है। अनुमन्ता का अर्थ है सम्मति देनेवाला, आज्ञा देनेवाला। अतः उसे अनुमन्ता कहा जाता है।

वह भर्ता है सबका। वह उत्पत्ति करता है, पालन करता है और भोक्ता भी वही है। भोक्ता कौन है ? जहाँ स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर आदि हैं, वह जीवरूप ही भोक्ता है। जहाँ स्थूल शरीर आदि हैं, वहाँ वह भोक्ता है।

प्रश्न यह है कि जब आत्मा का जन्म ही नहीं, वहाँ वह भर्ता तथा भोक्ता कहाँ ?

महामुनि शुकदेवजी राजा परीक्षित को बताते हैं कि 'आत्मा से तो तुम जन्मे ही नहीं हो।' 'कठोपनिषद्' में भी आया है कि आत्मा अजर-अमर है। आत्मा का नाश नहीं होता। जिसका जन्म होता है, उसका मरण भी होता है। यदि हम आत्मा का जन्म मानते हैं तो उसका मरण भी होगा जो गीता आदि शास्त्रों के मत के विरुद्ध है। अतः यह मानना पड़ेगा कि जहाँ उपाधियाँ हैं, वहीं उससे भर्ता और भोक्ता के संबोधन लगाये जाते हैं।

तुम दृष्टा हो, अनुमन्ता हो और महेश्वर भी। महेश्वर ब्रह्मा आदि का भी स्वामी है। तुम वह हो, तुम सच्चिदानंद हो। उसे 'नित्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म', 'आनन्दो ब्रह्म' भी कहते हैं। वह है भूमा नित्य सुख, उसे परमात्मा कहते हैं।

२. लोग कहते हैं कि 'हमें शांति चाहिए।' यदि तुम वास्तव में शांति चाहते हो तो कटिबद्ध होकर हृदय शुद्ध करो। उसे पवित्र करो। इससे तुम जीवन्मुक्त हो जाओगे। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के पाँचवें अध्याय के सातवें श्लोक में आया है :

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

'जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तःकरणवाला है तथा सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।'

इस श्लोक में जीवन्मुक्ति हेतु कर्म के उपाय बताये गये हैं। इसमें जो कहा गया है, उसे धारण करने से नर हो या नारी, साधु हो या गृहस्थी सब जीवन्मुक्त होंगे।

पाँचवें अध्याय के २८ वें श्लोक में आता है :

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

'जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है।' अतः मन, बुद्धि और इन्द्रियों को वश में रखो।

३. क्रोध आदि से ऊपर उठो, तभी तुम्हें बोध होगा, तत्त्व का ज्ञान होगा। यह शरीर एक गढ़ है। इसके भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि जो विकार बैठे हैं, वे आवरण करते हैं। दर्पण के ऊपर यदि पर्दा होगा तो उसमें आप अपना मुख नहीं देख सकोगे। वैसे ही जब तक हृदयरूपी दर्पण पर विकाररूपी आवरण है, तब तक आपकी आत्मा का दर्शन नहीं होगा। जैसे धुआँ अग्नि को ढक लेता है, वैसे ही विकार अंतःकरण पर आवरण करते हैं। मल, विक्षेप तथा आवरण - ये तीन दोष हैं। त्यागी, गृहस्थी, नर अथवा नारी जिसमें भी ये दोष हैं, उसमें गड़बड़ी करते हैं। अतः क्या किया जाय ? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि को पकड़ो, फिर तुम्हारी जीत होगी। यदि इन विकारों से न छूटोगे तो फिर मामला कठिन है।

४. याद रखें कि जब तक अहंकार है, तब तक श्रद्धा नहीं होगी। श्रद्धा नहीं होगी तो कल्याण नहीं होगा। श्रद्धा के बिना लाभ नहीं होगा। श्रद्धा तथा

विश्वास के साथ विवेक भी होना चाहिए, नहीं तो आदमी फँस जाता है।

५. मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को वश में करोगे तो मन मुर्दा बनेगा। जब तक बुद्धि सूक्ष्म तथा शुद्ध नहीं हुई है, तब तक सच्ची बात समझ में नहीं आयेगी और ज्ञान के चक्षुओं के सिवा दर्शन नहीं होगा। जब तक मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को वश में न करोगे, तब तक अपने कर्तव्य का पालन भी ठीक तरह से नहीं कर सकोगे। याद रखें कि नर अथवा नारी, त्यागी अथवा गृहस्थी अपने कर्तव्य के पालन से ही सद्गति को प्राप्त होते हैं। जो कर्तव्य का पालन करता है, वही शुद्ध होता है। गीता का १८वाँ अध्याय भी पढ़कर देखो।

६. साधारण रूप से धर्म की २४ शाखाएँ हैं और सात्त्विक, राजस तथा तामस रूप से ७२ शाखाएँ हैं। उनमें तीन मुख्य हैं - यज्ञ, दान, और तप। वेदान्त तथा धर्मग्रंथों के मतानुसार ये यज्ञ, दान तथा तप ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करते हैं।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥

(गीता : १८.५)

७. दुःख सहन करनेवाले तपस्वियों को ही ज्ञान होता है। दूसरे अध्याय के १५ वें श्लोक में आया है :

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

'हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख-सुख को समान समझनेवाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है।'

इसी दूसरे अध्याय के १४ वें श्लोक में कहा गया है :

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

'हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देनेवाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिए हे भारत ! उनको तू सहन कर।'

इस श्लोक में जो 'मात्रा' शब्द आया है, वह पुरातन है। मनुस्मृति आदि शास्त्रों में भी यह आया है। मात्रा इन्द्रियों, मन तथा पदार्थों के मेल का नाम है। जो हमें अच्छे लगनेवाले पदार्थ हैं, उनके मिलने से हमें सुख और न अच्छे लगनेवालों के मिलने से दुःख होता है। जब तक यह शरीर रहेगा, तब तक सुख-दुःख, लाभ-हानि, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान से सम्बन्ध रहेगा ही। ये सुख-दुःख आते-जाते रहेंगे। कभी बढ़ेंगे और कभी कम होंगे। किंतु आप तो आत्मा होने के कारण दुःखी-सुखी नहीं होते। जो दुःख आने-जानेवाले हैं उनको सहन करो। अपने कर्तव्य का पालन करो। जो आने-जानेवाले दुःखों को सहन करता है, जब तक शरीर है तब तक अपने कर्तव्य का पालन करना नहीं छोड़ता, पूर्णरूप से पालता है, ऐसे त्यागी अथवा गृहस्थी नर अथवा नारी को नमस्कार है। ऐसा कर्तव्यपरायण गृहस्थी भी त्यागी से बढ़कर नहीं तो कम भी नहीं है। जो कर्तव्य का पालन करता है वह ठीक है, किंतु जो पालन नहीं करता, जिसका स्वभाव ठीक नहीं है वह चाहे वेद ही क्यों न पढ़े फिर भी पवित्र नहीं हो सकता। अतः भगवान की यह आज्ञा है कि मन, बुद्धि और इन्द्रियों को वश में रखो। उनके विकारों से बचो।

८. शरीर अनित्य है, किंतु आत्मा तो अजर-अमर है, अविनाशी है। संसार में कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है जो उसे नष्ट कर सके। अतः शरीर के शांत होने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। शरीर तो ऐसा है, जैसे बादल देखते-देखते आकाश से लोप हो जाते हैं। अनेक तरंग नदी में उत्पन्न होते हैं और लोप हो जाते हैं। वृक्षों में कई पत्ते और फल-फूल पैदा होते हैं और नियमानुसार झड़ जाते हैं तथा फिर नये उत्पन्न होते हैं। इस शरीर का भी यही काम है, फिर चिन्ता किसके लिए ?

९. 'भगवद्गीता' प्रतिदिन पढ़ा करो और उसका मनन किया करो। १६ वाँ अध्याय तो विशेष ध्यान देकर पढ़ा करो। उसके पहले तीन श्लोकों में दैवी सम्पदा के २६ गुणों अथवा श्रेष्ठ सत्त्वगुणी स्वभावों का वर्णन आया है। वे मुक्ति देनेवाले हैं। उन्हें धारण करो। त्यागी अथवा गृहस्थी, नर अथवा नारी जो उनको धारण न करेगा, वह मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा। राजसी-तामसी स्वभाव हमें जन्म-मरण के चक्र में डाल देता है, कुत्ते से भी नीच योनियों में ले जाता है। अतः इसका त्याग करो।

विचारशक्ति

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह सफलता के कुछ ऐसे सूत्र जान ले जिनकी मदद से वह सुगमता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके । हर लक्ष्य की प्राप्ति में सर्वप्रथम आवश्यकता है ऊँचे संकल्प की, ऊँचे विचारों की। हम जो भी करते हैं वह सर्वप्रथम वैचारिक रूप से हमारे मन में स्फुरित होता है । उस विचार पर बुद्धि अपनी क्षमता के अनुसार निर्णय लेती है। बाद में ही वह विचार कृति का रूप धारण करता है। अतः हर सफल कार्य का मूल सफलता के विचारों में होता है।

हमें करना यह है कि अपने लक्ष्य के अनुकूल विचारों को बार-बार मन में दोहराना तथा प्रतिकूल विचारधाराओं को प्रयत्नपूर्वक अथवा अन्य उपायों से दूर रखना है। अन्य उपायों में सुलभ उपाय यह है कि प्रतिकूल विचारधाराओं को दूर करने का प्रयत्न छोड़कर सकारात्मक चिन्तन करो। आत्मबल बढ़े ऐसे ही विचार करो, सतत सत्कार्यों में व्यस्त रहो। दुर्विचार, असफलता के विचार उन्हीं को आते हैं जो खाली बैठे रहते हैं। कहते भी हैं : **'खाली मन, शैतान का घर।'**

'यद् भावं तद् भवति ।' यह एक अटल सिद्धांत है। जो बार-बार सोचता है कि 'मैं दुर्बल हूँ' वह दुर्बल हो जायेगा। जो सोचता है कि 'मैं मूर्ख हूँ' वह मूर्ख ही बनेगा और जो सोचता है कि 'मैं भगवान और संतों का प्यारा हूँ और सफल होकर ही रहूँगा।' वह सफल होकर ही रहता है। अब अपना लक्ष्य निर्धारित करना तुम्हारे हाथ की बात है। चाहो तो तुम मूर्ख, दुर्बल व पलायनवादी भी बन सकते हो और चाहो तो बुद्धिमान, दृढ़ मनोबलवाले, तत्पर व लक्ष्यभेदी भी बन सकते हो।

विचारों में बहुत शक्ति छुपी हुई है। ऊँचे विचार करने में कोई पैसा खर्च नहीं करना पड़ता, कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता, कोई कोचिंग क्लास में नहीं जाना पड़ता। कितनी सरल और ऊँचाई पर पहुँचानेवाली बात है !

सकारात्मक, उन्नति के विचारों के प्रवाह हमें अपने मन में जगाने हों तो सुलभ उपाय हैं - सत्संग में जाना, संत रचित सत्शास्त्रों का पठन-मनन करना, भगवद्ध्यान करना, योगाभ्यास करना।

यदि इनमें से केवल सत्संग-श्रवण भी कर लोगे तो भी तुम्हारे लिए काफी है, क्योंकि यह एक ऐसी डोर है जो अन्य सभी उपायों को खींच लाती है, हममें नयी उमंग, नया उत्साह भर देती है।

सबकी भलाई के विचार करो। हमेशा सत्कार्य करो। इससे औरों के शुभ संकल्प भी तुम्हें मदद करेंगे।

विवेकी वह है जो अपने मन पर निगरानी रखता है, सतर्क रहता है, सावधान रहता है। अपने विचारों का परीक्षण-आत्मनिरीक्षण करता है।

आप कितने भी पतित हो, कितने भी असफल हो किंतु विचारशक्ति अथवा संकल्पशक्ति के इन सुलभ नियमों को जान लोगे तो उन्नत एवं सफल हो जाओगे।

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
सफलता तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल॥

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

बौद्धिक विकास के लिए

शरीर का सीधा सम्बन्ध मन से है । यदि मन प्रसन्न होता है तो हर कार्य को करने की रुचि होती है और अगर मन में ही सुस्ती हो तो किसी भी कार्य को करने की रुचि नहीं होती । यहाँ पर ताजगी, स्फूर्ति, मन की प्रसन्नता एवं बौद्धिक विकास के लिए कुछ उपयोगी जानकारी दी जा रही है :

अश्वगंधा, ब्राह्मी, शंखपुष्पी तथा शतावरी, इन चारों को ५०-५० ग्राम मात्रा में लेकर अलग-अलग कूटकर बारीक चूर्ण बना लें और सभीमें आवश्यकतानुसार मिश्री मिलाकर रख लें । रोज रात्रि को भोजन के १ घंटे बाद इनका १-१ चम्मच चूर्ण १०० मि.ली. दूध में मिलाकर पियें ।

इसके सेवन से दिनभर की थकावट, मानसिक शिथिलता और निर्बलता दूर होगी और नींद भी अच्छी आयेगी । सुबह उठने पर शरीर में ताजगी-चुस्ती-स्फूर्ति तथा मन में उमंग का एहसास होगा । यादशक्ति का विकास होगा । पढ़े हुए को याद रखने में मदद मिलेगी ।

यह प्रयोग दिमागी काम करनेवालों, विद्यार्थियों, युवा-प्रौढ़ एवं वृद्ध स्त्री-पुरुषों और गर्भवती स्त्रियों के लिए विशेष लाभदायक है ।

किंतु इससे भी कई गुना लाभदायक हैं : भ्रामरी प्राणायाम, सारस्वत्य मंत्र का जप, भगवान का ध्यान, त्राटक, हरि-कीर्तन, सुबह-शाम १५ मिनट तक ओंकार का गुंजन । इस प्रकार करने से बौद्धिक व मानसिक विकास तो होता ही है, साथ में शरीर भी स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहता है । फिर किसी भी प्रकार की बाहरी दवाई की जरूरत नहीं पड़ती ।

सहज-सरल भारतीय वैदिक पद्धति को अपनाने से अनायास ही सारे गुण प्रकट हो जाते हैं । शरीर तो स्वस्थ रहता ही है, मन भी प्रसन्न रहता है । साथ ही बौद्धिक योग्यताओं का विकास भी होने लगता है । फिर देरी क्यों करना ?

श्री उड़िया बाबाजी

जन्म, बाल्यकाल और शिक्षा

प्रत्येक काल की सच्ची विभूति उस समय के महात्मागण ही होते हैं । वे समाज को जिस ओर ले जाना चाहते हैं उसी ओर प्रगति होती है । वास्तव में तो प्रभु ही महापुरुषों के रूप में अवतरित होकर संसार की आध्यात्मिक प्रगति का नियमन करते रहते हैं । महात्माओं का अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता । उनकी जो कुछ प्रवृत्ति होती है, वह तो विश्व के कल्याण के लिए विश्वंभर की प्रेरणा से ही होती है । प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों से लेकर आज तक के महापुरुषों के जीवन में यही नियम काम करता रहा है । उन्होंने तत्कालीन समाज की सामाजिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति की है ।

अर्वाचीन भारत में जिन महापुरुषों के कारण भक्ति और ज्ञान की जागृति हुई है, उनमें से एक थे श्री उड़िया बाबाजी । आप अपने समय के अग्रगण्य महापुरुषों में से एक थे । आपके द्वारा केवल भावुक भक्तों का ही उपकार नहीं हुआ, प्रत्युत तत्त्वजिज्ञासुओं की ज्ञानपिपासा भी पूर्णतया शांत होती थी । यहाँ संक्षेप में आपका जीवन-परिचय दिया जा रहा है ।

आपके पिताजी का नाम पंडित वैद्यनाथ मिश्र और माताजी का नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था । आपका जन्म भाद्रपद कृ. ७ वि. सं. १९३२ को ठीक मध्याह्न के समय हुआ । घर में प्रथम पुत्र का जन्म होने के कारण सभीको बड़ा आनंद हुआ, किंतु विधाता का विधान दूसरा ही था । आपकी माता

लक्ष्मीदेवी पर प्रसूति रोग का आक्रमण हुआ और वे तीसरे ही दिन परलोक सिधार गयीं।

अब आपके पालन-पोषण का भार आपकी छोटी ताईजी, पं. प्रभाकर मिश्र की पत्नी ने सँभाला। उनके कोई संतान नहीं थी। इसलिए उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से इसे स्वीकार कर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् नामकरण संस्कार कर आपका नाम आर्त्तत्राण मिश्र रखा गया।

बचपन में आपके स्वभाव में बड़ी विचित्रता थी। आपमें चपलता तो नाममात्र को भी नहीं थी। जहाँ डाल दिये वहीं पड़े रहते और जहाँ बैठे हैं वहीं बहुत देर तक बैठे रहते। खेलकूद से आपको कोई मतलब नहीं था। आपके नेत्र प्रायः मूँदे-से रहते थे। यदि कोई आपको पीटता तो चुपचाप सहन करते, उसके प्रतिकार का कोई भी प्रयत्न नहीं करते थे। आपकी इस मुनिवृत्ति से सभीको बड़ा आश्चर्य होता था।

यज्ञोपवीत संस्कार के बाद घर पर ही एक गणक (जोशी) के द्वारा आपको उड़िया भाषा, गणित और साधारण संस्कृत की शिक्षा दी गयी। आपका शरीर दुर्बल था, इसलिए गुरुजनों की इच्छा आप पर पढ़ाई-लिखाई का विशेष भार डालने की नहीं थी। तथापि आपको घर में खाली पड़े-पड़े जीवन बिताना पसंद नहीं था। अतः एक दिन आप घरवालों से बिना कहे एक भड्डुरी (ब्राह्मणी) के लड़के के साथ अपने घर से चल दिये और बालेश्वर होते हुए मयूरभंज पहुँचे। उस समय आपकी आयु केवल १२ वर्ष की ही थी।

मयूरभंज की पाठशाला में आपके पिता के परिचित पद्मनाभाचार्य नाम के एक पंडित थे। अतः उन्होंने प्रसन्नता से आपको पाठशाला में भर्ती कर लिया। किंतु आपको भय था कि कहीं वे आपके आने की सूचना घरवालों को न दे दें जिससे आपके विद्याध्ययन में विघ्न उपस्थित हो जाय। इसलिए कुछ ही दिनों के बाद आप वहाँ से बाल्याबेड़ा चले आये। यहाँ राजा कृष्णचन्द्र के विद्यालय में भर्ती होकर आप अध्ययन करने लगे और ५ वर्ष तक यहीं रहकर आपने काव्यतीर्थ परीक्षा पास की। इस बीच में आप केवल एक बार घर गये। हाँ, पत्रादि के द्वारा आप घरवालों को अपना समाचार देते रहते थे।

जिस समय आप काव्यतीर्थ के अन्तिम खण्ड में पढ़ रहे थे, तब एक ऐसी घटना हुई जिससे आपके हृदय में निहित निगूढ़ भगवत्प्रेम का परिचय मिलता है। राजा कृष्णचन्द्र एक निष्ठावान वैष्णव थे। उनके यहाँ भगवान श्री गोपीनाथ का एक मन्दिर था। उसमें कार्तिक शु. ९ से पूर्णिमा तक उत्सव मनाया जाता था। इस समय वहाँ नाटक मण्डलियाँ भी आती थीं। इस वर्ष कलकत्ते की 'बाल-संगीत' नाम की एक सुप्रसिद्ध मण्डली बुलायी गयी थी। उसने 'ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण' नामक नाटक प्रस्तुत किया। नाटक में एक दृश्य आया कि व्रज की वनस्थली में सखाओं से घिरे हुए श्रीनन्दनन्दन दोपहर का भोजन कर रहे हैं। गोवत्स इधर-उधर चर रहे हैं। बाल-गोपालों ने भगवान को चारों ओर से घेरा हुआ है। श्यामसुन्दर उन्हें पत्तों पर भोजन परोस रहे हैं और बाल-गोपाल एक-दूसरे से छीना-झपटी कर रहे हैं। इस अद्‌भुत लीला को लोक-पितामह ब्रह्माजी एक वृक्ष की ओट में छिपकर निहार रहे हैं। इस लीलामय दृश्य का बालक आर्त्तत्राण पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। ये वहाँ से उठकर अपने कमरे में चले आये और उसीका चिन्तन करने लगे। चिन्तन करते-करते इनकी वृत्ति भावसमाधि में ऐसी तल्लीन हुई कि तीन दिन और तीन रात इन्हें बाह्य जगत का भान ही न रहा। इनके चित्त पर केवल यही चित्र अंकित रहा। यह इनके जीवन में पहला भावावेश हुआ। साथी विद्यार्थी तो इस रहस्य को कुछ भी नहीं समझ सके।

इसी वर्ष एक और भी घटना हुई। पाठशाला में गंगाधर मिश्र नाम के एक विद्यार्थी थे। वे आपको अपने छोटे भाई के समान समझते थे और सब प्रकार से आपकी देखभाल करते थे। कार्यवश वे मेदिनीपुर गये और वहाँ चार-पाँच घण्टों में ही हैजे से उनका देहान्त हो गया। इस दुर्घटना का भी आपके चित्त पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। इससे आपको सारा संसार नाशवान और नीरस प्रतीत होने लगा। अब आपको किसीका भी संसर्ग अच्छा नहीं लगता था और आप सबसे अलग उदासीन भाव से रहने लगे। यहीं से आपके जीवन में वैराग्य का आरम्भ हुआ।

(क्रमशः)

'परिप्रश्नेन...'

(श्री उड़िया बाबाजी)

✻ भजन के विषय में ✻

प्र. : भजन में क्या-क्या आवश्यक हैं ?

उ. : शास्त्रविहित कर्मों में निपुणता, सात्त्विक व्यवहार तथा गीता के सत्रहवें अध्याय में कहे हुए शारीरिक, वाचिक और मानसिक तप भजन में परम आवश्यक हैं। भजन के लिए तीनों तरह की तैयारी करनी पड़ती है।

प्र. : भगवत्प्राप्ति के उपाय क्या हैं ?

उ. : भगवन्नाम का स्मरण करना, भगवान और भगवद्भक्तों की सेवा करना, भगवद्भक्तों का संग करना, भगवान का गुणानुवाद करना, भगवद्भक्तों की जीवनी पढ़ना, भगवान का ध्यान करना, भगवान का नामसंकीर्तन करना और भगवान में आसक्ति हो जाना ही भगवत्प्राप्ति के उपाय हैं।

प्र. : भगवद्भक्त को किन-किन बातों से बचना चाहिए ?

उ. : (१) मत-मतान्तर के झगड़ों से बड़ी भारी हानि होती है, अतः एक-दूसरे के पंथ की निन्दा न करे। (२) कपटपूर्ण व्यवहार का सर्वथा त्याग करे। (३) स्त्री, बालक और मूर्खों का संग न करे। (४) प्रतिदिन कुछ समय के लिए एकांतवास करे। (५) विषयी मनुष्यों के संग का त्याग करे। (६) विषयचिन्तन का त्याग करे। (७) विषयों के संग से सर्वथा डरता रहे। (८) परनिन्दा का त्याग करे। (९) इन्द्रियलोलुपता भी भजन में बाधक है। इसका भी त्याग करे।

प्र. : भजन करने में रुचि कैसे बढ़े ?

उ. : भजन करने से ही भजन में रुचि बढ़ती है।

प्र. : सत्संग सुनने से भी भजन में रुचि क्यों नहीं होती ?

उ. : पाप की अधिकता होने के कारण ही भजन में रुचि नहीं होती। सत्संग से तो भजन में रुचि और श्रद्धा बढ़ती ही है।

वसंत ऋतुचर्या

शीत व ग्रीष्म ऋतु का सन्धिकाल वसंत ऋतु होता है। वसंत ऋतु में रक्तसंचार तीव्र हो जाता है जिससे शरीर में स्फूर्ति रहती है।

इस ऋतु में आयुर्वेद ने खान-पान में संयम की बात कहकर व्यक्ति और समाज की निरोगता का ध्यान रखा है।

वसंते निचितः श्लेष्मा दिनकृभ्दाभिरीरितः।

'चरक संहिता' के अनुसार हेमन्त ऋतु में संचित हुआ कफ वसंत ऋतु में सूर्य की किरणों से प्रेरित (द्रवीभूत) होकर कुपित होता है, जिससे वसंतकाल में खाँसी, सर्दी-जुकाम, टॉन्सिल्स में सूजन, गले में खराश, शरीर में सुस्ती व भारीपन आदि की शिकायत होने की सम्भावना रहती है।

इस ऋतु में लाई, भूने हुए चने, ताजी हल्दी, ताजी मूली, अदरक, पुरानी जौ, पुराने गेहूँ की चीजें खाने के लिए कहा गया है। इसके अलावा मूँग बनाकर खाना भी उत्तम है। नागरमोथ अथवा सोंठ डालकर उबाला हुआ पानी पीने से कफ का नाश होता है।

मन को प्रसन्न करे और हृदय के लिए हितकारी हो ऐसे आसव, अरिष्ट जैसे कि मध्वारिष्ट, द्राक्षारिष्ट, गन्ने का रस, सिरका वगैरह पीना इस ऋतु में लाभदायक है।

वसंत ऋतु में आनेवाला होली का त्यौहार इस ओर संकेत करता है कि शरीर को थोड़ा सूखा सेंक देना चाहिए जिससे कफ पिघलकर बाहर निकल जाय। सुबह जल्दी उठकर योगासन, प्राणायाम,

हलका व्यायाम, दौड़ना अथवा गुलाटियाँ खाने का अभ्यास लाभदायक होता है । साथ में टंकविद्या का अभ्यास भी करना चाहिए ।

इस ऋतु में हलके गर्म पानी से स्नान तथा धूप का सेवन करना चाहिए । मालिश करके सूखे द्रव्य - आँवला, त्रिफला अथवा चने के आटे आदि का उबटन लगाकर गर्म पानी से स्नान करना हितकर है ।

इस ऋतु में रात्रि जागरण व दिन में शयन नहीं करना चाहिए । दिन में सोने से कफ कुपित होता है । जिन्हें रात्रि में जागना आवश्यक है वे थोड़ा सोयें तो ठीक है । देर रात तक जागने और सुबह देर तक सोने से मल सूखता है, आँख व चेहरे की कान्ति क्षीण होती है । अतः इस ऋतु में देर रात तक जागना, सुबह देर तक सोना स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है ।

वसंत ऋतु में सुबह खाली पेट हरड़े का चूर्ण शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता है । इस ऋतु में कड़वे नीम में नयी कोपलें फूटती हैं । नीम की १५-२० कोपलें २-३ कालीमिर्च के साथ खूब चबा-चबाकर खाना चाहिए । यह प्रयोग १५-२० दिन करने से वर्षभर चर्मरोग, रक्तविकार और ज्वर आदि रोगों से रक्षा करने की प्रतिरोधक शक्ति पैदा होती है । इसके अलावा कड़वे नीम के फूलों का रस ७ से १५ दिन तक पीने से त्वचा के रोग और मलेरिया जैसे ज्वर से भी बचाव होता है ।

चरक के अनुसार इस ऋतु में पचने में भारी, चिकनाईवाले, खट्टे और मीठे पदार्थों का सेवन वर्जित है । ठंडे पेय, आइसक्रीम, बर्फ के गोले, चॉकलेट, मैदे की चीजें, खमीरवाली चीजें, दही आदि पदार्थ बिल्कुल त्याग देने चाहिए । इस ऋतु में कफ को कुपित करनेवाले पौष्टिक और गरिष्ठ पदार्थों की मात्रा धीरे-धीरे कम करते हुए गर्मी बढ़ते ही बंद करके सादा, सुपाच्य आहार लेना शुरू कर देना चाहिए । कटु, तिक्त, कषायरस-प्रधान द्रव्यों का सेवन करना हितकारी है ।

धार्मिक ग्रंथों के वर्णनानुसार 'अलोने व्रत' (बिना नमक के व्रत) चैत्र मास के दौरान करने से रोग-प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है तथा त्वचा के रोग, हृदय के रोग, उच्च रक्तचाप (हाई बी. पी.), गुर्दा (किडनी) आदि के रोग नहीं होते ।

यदि वसंत ऋतु में आहार-विहार के उचित पालन पर पूरा ध्यान दिया जाय और बदपरहेजी न की जाय तो वर्तमान काल में तो स्वास्थ्य की रक्षा होती ही है, साथ ही ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में भी स्वास्थ्य की रक्षा करने में सुविधा हो जाती है ।

- साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत ।

✲

प्राचीन काल में पलाश के फूलों से तैयार सात्त्विक रंग अथवा गुलाल, कुमकुम, हल्दी से होली खेली जाती थी। लेकिन आज के परिवर्तन-प्रधान युग में अनेक प्रकार के रासायनिक तत्त्वों से बने पक्के रंगों का तथा कई स्थानों पर तो वार्निश, आईलपेंट व चमकीले पेंटों का भी होली खेलने में उपयोग किया जाता है।

होली खेलते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतने से आप हानिकारक रसायन युक्त रंगों के दुष्प्रभाव से बच सकते हैं :

(१) सावधानी रखिये कि कहीं होली का रंग आँख या मुँह में न चला जाय अन्यथा आँखों की ज्योति अथवा फेफड़ों व आँतों में हानि पहुँचा सकता है। अतः जब कोई रंग लगाये तब मुँह व आँखें बंद रखिये।

(२) रंग खेलने से पहले ही अपने शरीर पर नारियल, सरसों अथवा खाद्य तेल की अच्छी तरह से मालिश कर लीजिये ताकि त्वचा पर पक्के रंगों का प्रभाव न पड़े और साबुन लगानेमात्र से ही वे रंग निकल जायें। अपने बालों में भी तेल की अच्छी तरह से मालिश कर लीजिये ताकि रासायनिक रंगों का सिर पर कोई प्रभाव न पड़े।

इस प्रकार की मालिश के अभाव में रासायनिक रंग त्वचा पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं तथा त्वचा में कुछ दिनों तक जलन एवं शुष्कता बनी रहती है।

(३) जो लोग होली खेलने में वार्निश, आईलपेंट या अन्य किसी प्रकार के चमकदार पेंट का उपयोग करते हैं, ऐसे लोगों से सावधान रहिये। भूलकर भी उस टोली में शामिल न होइये, जिसमें इस प्रकार के घातक पदार्थों से होली खेली जाती हो। ये रंग चेहरे की त्वचा के लिए अत्यधिक हानिकारक साबित हुए हैं। कभी-कभी तो पूरा चेहरा ही काला या दागदार बन जाता है। यदि कोई आप पर ऐसा रंग जबरन लगा भी दे तो तुरंत ही घर पहुँचकर रूई के फाहे को मिट्टी के तेल में डुबोकर उससे धीरे-धीरे रंग साफ कर लीजिये। फिर साबुन लगाकर चेहरा धो डालिये।

(४) त्वचा पर लगे पक्के रंग को बेसन, आटा, दूध, हल्दी व तेल के मिश्रण से बना उबटन बार-बार लगाकर एवं उतारकर साफ किया जा सकता है। यदि उबटन के पूर्व उस स्थान को नींबू से रगड़कर साफ कर लिया जाय तो और भी लाभ होगा। नाखूनों के आस-पास की त्वचा में जमे रंग को भी नींबू द्वारा घिसकर साफ किया जा सकता है।

(५) रंग घर के बजाय बरामदे में या सड़क पर ही खेलें ताकि घर के भीतर रखी वस्तुओं पर उनका दुष्प्रभाव न पड़े।

(६) होली खेलते समय फटे या घिसे हुए पतले वस्त्र न पहनें ताकि किसी भी प्रकार की लज्जाजनक स्थिति का सामना न करना पड़े।

(७) होली के अवसर पर देहातों में भाँग व शहरों में शराब पीने का अत्यधिक प्रचलन है। पर नशे के मद में चूर होकर व्यक्ति विवेकहीन पशुओं जैसे कृत्य करने लगता है। क्योंकि नशा मस्तिष्क से विवेक का नियंत्रण हटा देता है, बुद्धि में उचित निर्णय लेने की क्षमता का ह्रास कर देता है और वह मन, वचन व कर्म से अनेक प्रकार के असामाजिक कार्य कर बैठता है। अतः इस पर्व पर सभी प्रकार के नशों से सावधान रहें।

(८) शिष्टता व संयम का पालन करें। भाई सिर्फ भाइयों की टोली में व बहनें सिर्फ बहनों की ही टोली में होली मनायें। बहनें घर के परिसर में ही होली मना लें तो और भी अच्छा है ताकि दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों की कुदृष्टि उन पर न पड़े।

(९) जो लोग कीचड़-गंदगी व पशुओं के मल-मूत्र जैसे दूषित पदार्थों से होली खेलते हैं, वे खुद तो अपवित्र होते ही हैं, औरों को भी अपवित्र करने का पाप अपने सिर पर चढ़ाते हैं। अतः मल-मूत्रवाले गंदे कीचड़ आदि का प्रयोग न करें।

(१०) रंग खेलते समय शरीर पर गहने आदि कीमती चीजें धारण न करें, अन्यथा भीड़ में उनके चोरी या गुम हो जाने की संभावना बनी रहती है।

दीक्षा से मिली नयी जीवन-दिशा

फिल्में देखने के कारण कुसंगति में पड़कर मैं दसवीं कक्षा से ही जर्दा, गुटखा खाता था व बीड़ी-सिगरेट तथा बियर आदि पीता था। कॉलेज में जाने पर भी यह क्रम चालू रहा । हस्तमैथुन जैसी घातक आदतों का भी मैं शिकार हो गया। इस तरह ९ वर्षों तक जीवन पतन के गर्त में गिरता गया। मेरे पहले के जीवन का सम्पूर्ण वर्णन मैं नहीं कर सकता। वास्तव में आहार-विहार और शिष्टाचार विहीन जीवन जीता हुआ मैं खुद को बड़ा आधुनिक एवं योग्य मानता था।

एक बार मैं अपने एक मित्र के कमरे पर गया। सौभाग्य से वहाँ पर मुझे पूज्य बापूजी की दो पुस्तकें - 'यौवन सुरक्षा' व 'तू गुलाब होकर महक' मिल गयीं, जिन्हें मैं मित्र से माँगकर पढ़ने के लिए ले आया। उन्हें पढ़कर मेरे जीवन ने करवट ली, जीवन में एक नया प्रकाश हुआ। मुझे अपने आचार, विचार और संस्कारहीन जीवन पर बड़ी ग्लानि हुई। एक दिन मैं मित्र के साथ इन्दौर में खण्डवा रोड, विलावली तालाब पर स्थित आश्रम में गया। वहाँ से पूज्य बापूजी की बहुत-सी पुस्तकें खरीद लाया।

बी.कॉम. पूरा होने पर मैं गाँव आया तो वहाँ सोनी टी.वी. पर पूज्य बापूजी के सत्संग को प्रतिदिन नियम से सुनता था।

सत्संग सुनते रहने से मेरे हृदय में बापूजी से मंत्रदीक्षा लेने की तीव्र इच्छा हुई। दिसम्बर १९९६ में सूरत आश्रम में आयोजित 'ध्यान योग शिविर' में दीक्षा लेने के बाद मेरी सारी गंदी आदतें दूर हो गयीं। मैं सुबह-शाम नियमित रूप से गुरुमंत्र का जाप करता रहा । मंत्रजाप से मेरी शारीरिक परेशानियाँ व मानसिक तनाव भी दूर हो गये।

सभी युवान-युवतियों से मेरी प्रार्थना है कि आप भी बाह्य आडम्बर युक्त, पतनोन्मुख, व्यसनी जीवन जी रहे हों तो सावधान हो जायें। शिक्षा के साथ बापूजी जैसे युवा-मनोविज्ञान के समर्थ आचार्य से दीक्षा लें।

जिनकी अमृतवाणी, साहित्य व मंत्रदीक्षा के प्रभाव से मेरे जीवन को नयी दिशा मिली और वर्तमान जीवन में सेवा व साधना का सुअवसर मिल रहा है, ऐसे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप सद्गुदेव को कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम...

- ओमप्रकाश सीतारामजी खण्डेलवाल
सुदामा पुरी, नसरुल्लागंज, जिला- सिहोर (म.प्र.).

✲ अगर आपको सद्गुरु प्राप्त नहीं होंगे तो आप आध्यात्मिक मार्ग में आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

✲ अपने गुरु से मंत्र की दीक्षा लो । इससे आपको सत्प्रेरणा मिलेगी और आप उच्च स्थिति में पहुँच सकेंगे। - आश्रम की पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' से

स्वास्थ्य पर बीजमंत्र का प्रभाव

मंत्रों का आविष्कार मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने किया। वे गहरे में गये तो उन्हें सूत्रात्मक मंत्र मिले जिन्हें बीजमंत्र कहते हैं। बीजमंत्र एक ही शब्द में बहुत-सा अर्थ संजोये हुए होते हैं। जैसे 'ॐ' बीजमंत्र है उसी प्रकार 'टं' भी बीजमंत्र है।

'टं' यह बीजमंत्र चन्द्रदेव का प्रतीक है। अचानक आयी हुई किसी बाधा के लिए 'टं' का जाप पर्याप्त होता है। एक भोजपत्र पर 'टं' लिखकर दाहिनी भुजा पर ताबीज में बाँधने से वह ताबीज सर्व-विघ्ननाशक के रूप में काम करता है। शरीर में कैल्शियम की कमी, नकसीर फूटने, महिलाओं के दूध कम बनने तथा नवजात शिशु के अधिक रोने-चिल्लाने पर एक कागज पर ग्यारह बार 'टं' लिखकर गले में ताबीज की तरह धारण करवाने से लाभ होता है, बच्चे का रोना-चिल्लाना शांत हो जाता है।

कंटालु हनुमान (गुज.), ३१ जनवरी व १ फरवरी : यहाँ पूज्यश्री का दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

रजोकरी (दिल्ली), ११ व १२ फरवरी : सम्पूर्ण भारत में फैले पूनम व्रतधारियों की विशाल संख्या व उनकी सुविधा को ध्यान में रखते हुए पूज्यश्री १० फरवरी की रात दिल्ली पहुँचे, जहाँ रजोकरी आश्रम में ११ व १२ फरवरी को २ दिवसीय 'पूनम दर्शन महोत्सव' सम्पन्न हुआ। दिल्ली व आस-पास के हजारों-हजारों साधकों ने यहाँ अपने प्यारे गुरुदेव के दीदार पाकर अपना पूनम-दर्शन व्रत पूर्ण किया।

आत्मा-परमात्मा के राही साधक-समुदाय को योगनिष्ठ पूज्य बापूजी ने भगवान से एकत्व स्थापित कर भगवन्मय जीवन जीने की प्रेरणा दी, साथ ही साधना के अनुभूत प्रयोग भी बताये।

जगन्नाथपुरी (उड़ीसा), १४ से १६ फरवरी : पुराण-प्रसिद्ध भगवान जगन्नाथ की नगरी जगन्नाथपुरी इन दिनों मानों, 'हरिॐ' पुरी बन गयी।

नगरी में यत्र-तत्र पूज्य बापूजी के साधक-साधिकाएँ ही नजर आ रहे थे। 'हरिॐ' के उच्चारण से परस्पर अभिवादन करते टैक्सी चालक साधकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। मानों, पूज्य बापूजी के साधकों को आकर्षित करने की उन्हें यह एक कुंजी ही मिल गयी थी।

उधर समुद्रतट पर अठखेलियाँ करतीं सामुद्रिक लहरें व मनोहारी क्षितिज ईश्वर के वैभव का दर्शन करा रहे थे तो इधर विशाल सत्संग-मंडप में ब्रह्मनिष्ठ बापूजी के मुखारविंद से निःसृत भक्ति, योग, ज्ञान की धारा जनसमुद्र को आह्लादित व आनंदित कर रही थी।

पूज्यश्री के आत्मिक सान्निध्य में तीन दिन, तीन पल की भाँति बीत गये और फिर आ गयी विदाई की वेला। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के अलावा उड़ीसा के विभिन्न प्रान्तों से आये लाखों सत्संगी व पूनम व्रतधारी रवाना हुए अपने-अपने घरों की ओर... कुछ नये संकल्प, उन्नत जीवन की कुछ नवीन कुंजियाँ, तन-मन की तन्दुरुस्ती की कुछ विलक्षण युक्तियाँ और बुद्धि में बुद्धिदाता का ज्ञान पाकर धन्यता का अनुभव करते हुए...

अनगुल (उड़ीसा), १७ व १८ फरवरी : १६ फरवरी को पुरी में कार्यक्रम की पूर्णाहुति कर पूज्यश्री १७ फरवरी को कटक (उड़ीसा) पहुँचे। वहाँ नवनिर्मित आश्रम का उद्घाटन कर वे शाम को अनगुल पहुँचे। वहाँ पर १७ फरवरी को श्री सुरेशानंद ब्रह्मचारी व १८ फरवरी को पूज्य गुरुदेवश्री का सत्संग-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

स्थानीय सत्संग-प्रेमियों के अलावा 'अनगुल किशोर कारागार' व 'तालचेर जेल' के कुख्यात कैदियों ने भी सत्संग का लाभ उठाया। उल्लेखनीय है कि आश्रम की अनगुल समिति पिछले १ वर्ष से इन जेलों में भजन, कीर्तन, योगासन व विडियो सत्संग का आयोजन कर कैदियों में उत्तम संस्कारों के सिंचन द्वारा उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाने का सत्कार्य कर रही है।

संबलपुर (उड़ीसा), २० व २१ फरवरी : २० फरवरी को पूज्यश्री के मुखारविंद से निःसृत, भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा पूतना को स्वधाम भेजे जाने की लीला का रोचक वर्णन ऑडियो कैसेट अथवा विडियो सी.डी. के माध्यम से अवश्य सुनने-देखने योग्य है।

संबलपुरवासियों को पूज्यश्री के सत्संग से संबल मिला, जीवन जीने की कला मिली और मंत्रदीक्षा पानेवाले सौभाग्यशालियों को मिली जीते-जी परमात्म-शांति पाने की अटकल; मरने के बाद मुक्ति दिलाने का वादा नहीं, अपितु जीते-जी मुक्ति का नगद सौदा।

रायपुर (छत्तीसगढ़), २२ से २४ फरवरी : पिछले ४ वर्षों से स्थानीय समिति व छत्तीसगढ़वासी अपने क्षेत्र में लोकलाड़ले बापूजी के दर्शन-सत्संग पाने के लिए लालायित थे। अन्ततः पूज्यश्री की व्यस्तता और अमूल्य समय में से वे २२ से २४ फरवरी

तक का समय प्राप्त करने में सफल हुए। पहले दिन ही सत्संग में उमड़ा जनसैलाब 'बूढ़ा तालाब' तक छलका। श्रद्धालुओं की संख्या इतनी अधिक थी कि वे तालाब की दीवार और सड़क पर खड़े होकर इन अलख के औलिया की अमृतवाणी का रसपान कर रहे थे।

पूज्यश्री के सत्संग में पहली बार आये लोग तो इतनी विशाल भीड़ देखकर दाँतों तले उँगली दबा रहे थे। कोई इसे कुंभ मेले की संज्ञा दे रहा था तो कोई महाकुंभ की। दूर-दूर तक बैठे तथा खड़े लोगों के लिए क्लोज सर्किट टी.वी. भी लगाये गये थे।

यहाँ की धर्मप्रेमी जनता की भीड़ तो बढ़ती ही गयी। पंडाल बनानेवालों ने पंडाल बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी, व्यवस्था तंत्र ने भी सत्संगियों के लिए व्यवस्था करने में एड़ी-चोटी एक कर दी परंतु निरंतर उमड़ते जनसैलाब के आगे सारी बैठक व्यवस्थाएँ नन्हीं पड़ने लगीं। पंडाल के बाहर धूप में खड़े श्रद्धालु सिर को रुमाल या आँचल से ढँककर संतदर्शन तथा सत्संग-श्रवण में तल्लीन रहे। पूज्यश्री ने उन्हें तपस्वियों की संज्ञा दी। इस विशाल श्रोता-समुदाय के साथ ही उनके बीच बैठे केन्द्रीय खान मंत्री श्री रमेश बैस, मुख्यमंत्री श्री अजीत जोगी एवं भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल भी घंटों तक इस अभूतपूर्व सत्संग-रस का तल्लीनतापूर्वक पान करते हुए गद्गद होते रहे।

पूज्यश्री ने सत्संग-प्रांगण में विशाल संख्या में उपस्थित सत्संगियों को अपने मतदान के अधिकार का अवश्य उपयोग करने की हिदायत दी। संतश्री ने चुटकी लेते हुए कहा : ''मेरे सत्संगी किसी हरामी या भ्रष्ट को तो वोट नहीं देंगे लेकिन कोई दूध का धुला न मिले तो पानी के धुले को तो वोट देंगे ही।''

गरीबों में भण्डारा तथा अन्न, वस्त्र, बर्तन, प्रसाद, दक्षिणा आदि का वितरण

गुजरात के कंटालु हनुमान, उड़ीसा के पुरी, अनगुल, संबलपुर, झांगरपाली (कटक रोड) एवं छत्तीसगढ़ के रायपुर में भण्डारे के अलावा गरीबों में अन्न, वस्त्र, बर्तन, प्रसाद व दक्षिणा का भी वितरण किया गया। ग्राम कंजा (जिला अनगुल) के गरीबों में पूज्य गुरुदेवश्री की प्रेरणा से उक्त सामग्री के अलावा राशनकार्ड भी वितरित किये गये। परंतु पूज्यश्री को संतोष तो तब हुआ जब वे स्वयं १८ फरवरी की सुबह अनगुल में सेवाधारियों के साथ दरिद्रनारायणों में उक्त सामग्री व दक्षिणा बाँटने में जुट गये।

भक्ति, योग और ज्ञानमार्ग के अनुभवनिष्ठ गुरुदेवश्री की आत्मस्पर्शी वाणी को दूरदर्शन चैनल के माध्यम से या प्रत्यक्ष सुननेवाले श्रोता यह दृश्य देखकर सहसा यकीन नहीं कर पायेंगे कि ये वही अथाह ज्ञान के सागर, करोड़ों के चहेते पूज्यपाद बापूजी हैं।

लेकिन कोई माने या न माने, यही प्रत्यक्ष है।

संबलपुर शहर से दूर कटक रोड पर स्थित झांगरपाली गाँव के लोगों की गरीबी की बात सुनकर पूज्यश्री अपने अति व्यस्त कार्यक्रम में से भी समय निकालकर २१ फरवरी की दोपहर को वहाँ पहुँच ही गये। जबकि इसी दिन संबलपुर में भी सत्संग-कार्यक्रम चल रहा था।

अंत में यही कहना पड़ेगा कि '**ज्ञानी की गत ज्ञानी जाने...** अपने संकीर्ण मनोमय संसार में ही विचरनेवाला क्या पहचाने?'

मानवरूप में विचरते, महेश्वर के अनुभव में प्रतिष्ठित ऐसे संतश्री को कोटि-कोटि वंदन।

धनभागी हैं वे लोग जो ऐसे दिव्य कार्यों के चश्मदीद गवाह बन पाते हैं, इनके बारे में सुन पाते हैं!

आत्म-साक्षात्कारी महान गुरु का संग प्राप्त करना मुश्किल है, किंतु वह बहुत ही लाभकारी है। आप अगर भक्तिभावपूर्वक, ईमानदारी से प्रार्थना करेंगे तो वे स्वयं आपके पास आयेंगे। - आश्रम की पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' से

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

(१) वल्लभविद्यानगर (आणंद, गुज.) : युवावर्ग व विद्यार्थी उत्थान शिविर, ११ से १४ मार्च २००३, शास्त्री मैदान, चारुतर विद्या मंडल। मोबाईल: ९८२५११६४८०, ९८२४००९४५०, ९८२४०११८६२, ९८२५२८१९३९, ९८२५३७४८७१.

(२) सूरत (गुज.) : होली ध्यान योग शिविर, १५ से १८ मार्च २००३, संत श्री आसारामजी आश्रम, आश्रम रोड, जहाँगीरपुरा। फोन: (०२६१)२७७२२०१-२.

पूर्णिमा दर्शन (सूरत, गुज.): १८ मार्च २००३

भूखे को अन्न, प्यासे को पानी। धन-दरिद्र को दिया अर्थ दान। ज्ञान-पिपासा भी पूरण कर दी। दिया लाखों को सत्संग-रस दान ॥
कंटालु हनुमान (गुज.) में भोजन-प्रसाद व दक्षिणा के साथ सत्संग-अमृत का लाभ लेते कंटालुवासियों का विशाल समुदाय।

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग से धन्य हुए संबलपुरवासी (उड़ीसा) भावविभोर होकर पूज्यश्री की आरती उतारते हुए।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED NO. GAMC/1132/2003 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. 236. REGD. NO. TECH/47 833/MBI/2003 POSTING FROM MUMBAI 9-10 OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.
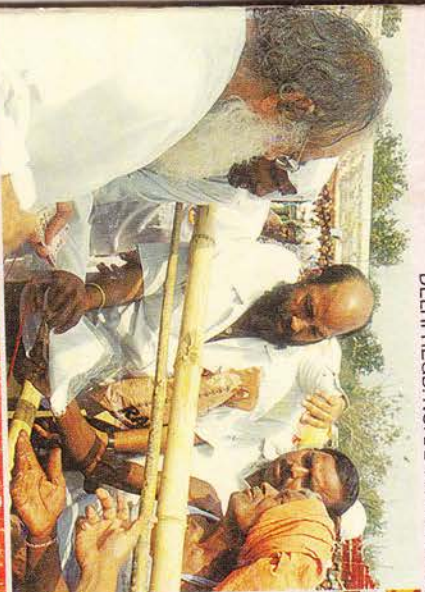
पूज्य बापूजी की प्रेरणा से उड़ीसा में कई भण्डारों का आयोजन हुआ लेकिन इतने से संत-हृदय माने कैसे ? भण्डारा-स्थलों पर स्वयं जाकर पूज्यश्री ने दीन-दुःखियों को दक्षिणा, अनाज आदि का वितरण किया और उनके दुःख-समस्याओं को सुनकर उपाय भी बताये।

हे भारत के विद्यार्थी ! तू है बड़ा भाग्यवान। जीवन-विकास की कुंजी पाकर कर ले अपना उत्थान ॥

पूज्यश्री से 'अपना हाथ - ज़गन्नाथ' की उक्ति को जीवन में चरितार्थ कर पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा पा रहे हैं जगन्नाथपुरी (उड़ीसा) के विद्यार्थी।